गृहस्थ आश्रम प्रवेशिका

वीतराग महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज
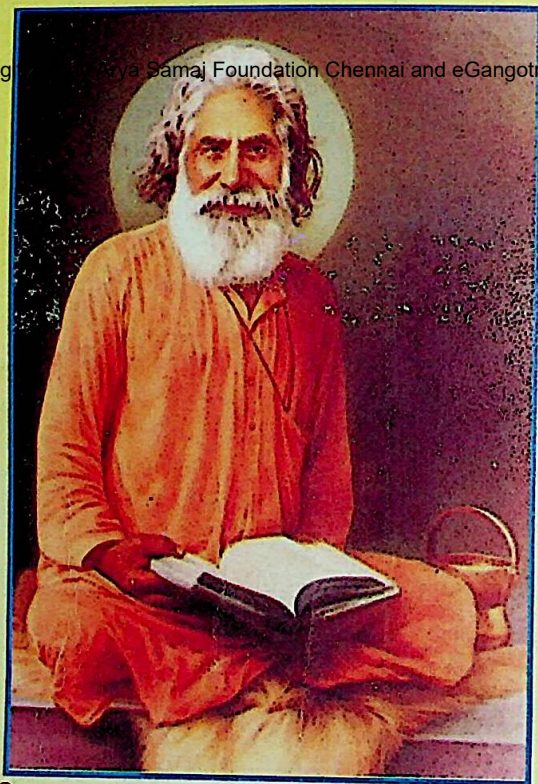
वीतराग महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

जन्म १८८७—महाप्रस्थान १६ मार्च, १९६७

सरलता—सादगी के प्रतीक—सौम्य सन्त प्रभुआश्रित जी आज से लगभग एक सौ पन्द्रह वर्ष पूर्व जिन्होंने निर्धनता के आंचल में नेत्र खोले, तपस्या के आंगन में लोरी सुनी, तपती दुपहरी में पोथी पढ़ी, अनिकेत रह कर गृहस्थी संभाली, भूखे रहकर हरिभजन किया, मौन रहकर आराध्य को रिझाया, साधक बनकर योग को साधा, प्रचारक बनकर यज्ञ को विस्तारा, चिन्तन करके गायत्री को सराहा, पोथी पढ़—पढ़कर जीवन को बांचा, यश अपयश से परे रहकर नाम—धन अर्जित किया और अन्त में पंचतत्व की चदरिया को ज्यों की त्यों धरकर जीवन मुक्त हो गए।

।। ओ३म् ।।

सावधान–केवल गृहस्थियों के पढ़ने योग्य
बच्चों को न दीजिए।
पुत्र माता–पिता की आत्मा है।
एक सुपुत्र कुल का खेवनहार है।

गृहस्थ आश्रम प्रवेशिका

अर्थात्

माता–पिता के उपदेश

जिसमें

कुमारियों, कुमारों और उनके संरक्षकों के लिए काम की कुछ आवश्यक तथा प्रारम्भिक रहस्य की बातें गृहस्थ आश्रम के उद्देश्य और उनकी प्राप्ति के साधन संक्षेप में बताए गए हैं।

लेखक
वीतराग महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज
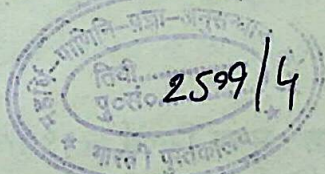
वैदिक भक्ति साधन आश्रम
आर्य नगर, रोहतक (हरियाणा)

प्रकाशक एवं वितरक :
वैदिक भक्ति साधन आश्रम
आर्यनगर, रोहतक-१२४००१
(हरियाणा)

लेखक : वीतराग महात्मा प्रभुआश्रित जी महाराज

मूल्य : १७ रुपये

मुद्रक : मयंक प्रिन्टर्स, २१९९/६४, नाईवाला करौल बाग
नई दिल्ली-५ दूरभाष : ५१५४८५०४, ५१५४८५०३
चलभाष : ९८११०४७९५३

दो शब्द

आधुनिक युग के यशस्वी सन्त महात्मा प्रभुआश्रित जी महाराज समस्त मानव जाति के लिए एक वरदान सिद्ध हुए हैं। पूज्य गुरुदेव परम त्यागी, तपस्वी, कर्मठ कर्मयोगी एवं वैदिक मिशनरी थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन वेद-यज्ञ-योग के प्रचार-प्रसार में लगा दिया। परमात्मा की कृपा से आपकी प्रेममयी सुमधुर वाणी को जिसने सुना उसका कायाकल्प हो गया।

महाराज जी की लेखनी अत्यन्त प्रभावशाली थी। जटिल से जटिल गूढ़ विषयों को सरल और रोचक भाषा में मनभावन और अनुप्रेरक रूप में प्रस्तुत करते हुए इसी पुस्तक में लिखा है—

"सर्व आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है। सब आश्रम इसी के आधार पर हैं। गृहस्थ को जिन्होंने इसलिए अपनाया कि हम इससे मोक्ष की उपलब्धि करें, उन्होंने बड़े-बड़े संन्यासी, महात्माओं को भी सुमार्ग दिखाया। गृहस्थ में विवाह के समय जो मन्त्र आते हैं, प्रतिज्ञाएं होती हैं, क्रियाएं कराई जाती हैं, यदि वर-वधू उनका पूरा अनुष्ठान करें तो बस बेड़ा पार है। गृहस्थ तो स्वर्गीय आश्रम है नारकीय नहीं।"

१६-३-१९६७ को महाराज जी स्वर्ग सिधारे तथापि साधनावस्था उपरान्त उनकी अमर लेखनी से निकले हीरे-मोती शब्द वाक्य पुस्तक रूप में आध्यात्मिक जगत् में धर्मप्रेमी जनों

का पथ प्रदर्शन कर रहे हैं। लगभग ६ दर्जन पुस्तकों के अनेकों संस्करण छप चुके हैं फिर भी माँग सदा बनी रहती है।

रंगीन कवर, अच्छा कागज और सुन्दर छपाई द्वारा पुस्तक को आकर्षक बनाने हेतु लघु प्रयास किया है, जिससे पुस्तक मूल्य में कुछ बढ़ोत्तरी हुई है फिर भी धर्मप्रचार की भावना से पुस्तक का मूल्य लागत मात्र ही रखा गया है, जिससे सर्वसाधारण जन भी लाभ उठा सकें।

महाराज जी के अन्तःस्थल से निकले भावों को पढ़कर सभी प्रेमीजन अभिभूत हो जाएं, की कामना के साथ पाठकों के हाथ में पुस्तक सौंपते हुए हर्ष हो रहा है।

—दर्शन कुमार अग्निहोत्री
प्रधान
वैदिक भक्ति साधन आश्रम,
रोहतक

२३ अक्टूबर, २००४

।। ओ३म् ।।

भूमिका

बसन्त पंचमी का त्यौहार था। युवक–युवतियां, स्त्री पुरुष तथा कुमार और कुमारियों ने प्रकृति का अनुकरण किया। सौन्दर्य का समय था। प्रकृति का बसंत तो खेतियों और जंगलों को अपना केसरी बाना पहिनाए हुए, पतझड़ से मुरझाए छोटे बड़े सभी वृक्षों को कोपलों और पौधों (नवकुमार) द्वारा शुभ समाचार दे रहा था कि अब उनके जीवन में शुभ मुहूर्त आ गया है–ऋतुराज बसन्त का आगमन ही आगमन है। राजा के आने पर सब दुःख और क्लेश मिट जाते हैं, परन्तु हमारे भारत–वर्ष में तो बस अन्त हो जाने का भय है। आज की सभ्यता और प्रकृति में परस्पर विरोध है। नए–नए आविष्कारों ने संसार में क्रान्ति पैदा कर दी है। मनुष्य की दौड़ धूप इतनी बढ़ गई है कि सर्वत्र अशान्ति दिखाई देती है। व्यापार ने संसार में एक युद्ध सा छेड़ रखा है। कारखानों के धुएं ने श्रमी लोगों के स्वास्थ्य को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया है। भयानक मशीनों ने स्वतंत्रता छीन ली है। तेल, इत्र, पौडर तथा साबुन ने वास्तविक सौन्दर्य को भुला दिया है तथा कालिज की आडम्बरमयी ऊंची शिक्षा ने नवयुवकों को सुखार्थी तथा निष्क्रिय बना दिया है। सिनेमा थियेटरों ने तो रहा सहा धन तथा सदाचार की भी इतिश्री (सत्यानाश) कर दी है–इस दौड़धूप में पाप बड़े वेग से उन्नति कर रहा है तथा अपने साथ दुःख को भी फैला रहा है।

छोटे बच्चों से बड़े और युवकों से छोटे कुमारों को हमारी भाषा में "नींगर" कहते हैं। नीं–बुनियाद, गर–बनाने वाला अर्थात् जो मनुष्यत्व के मूल को बनाने वाला होता है। उसे नींगर कहते हैं। मैंने बसन्त के दिन आश्रम में और फिर ६ फरवरी १६३८ को समाज मन्दिर में बच्चों और कुमारों की दशा का चित्र चित्रित किया था कि वर्तमान काल में कितनी भयानक परिस्थिति हो गई है जिसके लिए माता–पिता का बड़ा उत्तरदायित्व है। लोग जिन के लिए धनोपार्जन करते और जायदाद, सम्पत्ति बनाते हैं उनके आचरण बनाने का तो ध्यान ही नहीं करते, परन्तु उसके लिए सम्पत्ति एकत्रित करने को दिनरात चिन्ता करते हैं।

गुरुकुल मुल्तान के उत्सव पर मुझे जाना था; परन्तु कुटिया पर व्रत का संकल्प हो जाने से विचार त्यागना पड़ा। जिस पर मथुरादास जी प्रंधान आर्यसमाज टोबा टेकसिंह ने कहा कि वर्तमान काल की दशा का ज्ञान कराना सब बच्चों विद्यार्थियों और उनके संरक्षकों के लिए बड़ा आवश्यक है इसलिए वहां जाना चाहिए। अस्तु मैं न जा सका, परन्तु व्रत में २० फरवरी १६३८ रविवार तदानुसार ६ फाल्गुन सं० १६६४ वि० तिथि षष्ठी कृष्ण पक्ष पर मुझे प्रेरणा हुई कि गृहस्थ सम्बन्धी छोटा ट्रेक्ट अवश्य लिखूं जिससे नव–विवाहित तथा नई सन्तान उत्पन्न करने वालों को किंचित लाभ हो सके। मैंने उसी दिन आरम्भ कर दिया परन्तु वह कुछ बढ़ गया। पूरी किताब भी न बन सकी और ट्रैक्ट से भी अधिक हो

गया। अतःएव इस छोटी–सी पुस्तक या गुटका में मैंने जो–जो बातें लिखी हैं वह निश्चय आंखों देखी कानों सुनी तथा कुछ अपने ऊपर बीतीं लिखी हैं। डाक्टरों की सम्मतियां तथा कुछ वाक्य संस्कारदीपिका के भी दिए हैं। हां नाम बदल दिये हैं, समझाने के लिए।

इस विषय में मुझे कुछ बातें ऐसे शब्दों में लिखनी पड़ी हैं जिन्हें साधारणतया जनता के समक्ष कहने में अति संकोच होता है। यह भी भय है कि कहीं कुछ एक सज्जन उनका यहां लिखना भी दोषयुक्त समझें। पर मैं प्रार्थना किये देता हूं कि ऐसी बातों के सम्बन्ध में माता–पिता तथा बड़ों का संकोचवश मौन धारण किये रहना बच्चों के लिए अत्यन्त हानिकारक प्रमाणित हो रहा है। यदि बुजुर्ग लोग इन बातों को सन्तान के सामने प्रकट करें तो अबोध कुमार कुपथगामी न होकर अनेक प्रकार की त्रुटियों का शिकार होने से बंच सकते हैं। दूसरे सभ्य देशों के मानव नेता इस सिद्धान्त के आगे सिर झुकाते हैं कि नवयुवकों को इन दुष्परिणामों से परिचित कराने के लिए माता–पिता तथा पुरोहितों की ओर से स्पष्ट शब्दों में ऐसी बातों का ज्ञान कराना आवश्यक है। यद्यपि आजकल भारत वर्ष की साधारण जनता इस महत्व को नहीं समझती। तथापि मैंने अपना कर्तव्य समझकर यह साहस किया है। आशा है मुझे क्षमा किया जायेगा। मैंने जिस पवित्र भाव तथा दर्द से लिखा है, स्वाध्याय करने वाले भी उसी भाव से इसका स्वाध्याय करेंगे तो अवश्य मुझे आशीर्वाद

देंगे "मन का कर्दम शुमा हजर बिकुनेद" अर्थात् मुझे तब पता लगा जब सब कुछ बीत गया।

यदि किसी एक को भी मेरे इस श्रम से लाभ पहुंचा तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा। इसका श्रेय महा० मथुरादास जी प्रधान आर्यसमाज टोबा टेकसिंह को देता हूं जिनके दिए विचारों से मुझ में लिखने का साहस हुआ।

–टेकचन्द (प्रभु–आश्रित)

प्रार्थना

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽति व्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न औषधयः पच्यन्तां योगक्षमो नः कल्पताम्।। (य० २२–२२)

हे समस्त क्लेशों के नष्ट करने वाले! बिगड़ी को सुधारने वाले! पाप–ताप अपहारक तथा संकटों से मुक्त करने वाले प्रभो! इस समय हमारा देश तथा मानव जगत् कुकर्मों के कारण पद्दलित हो चुका है। तुम्हारे बिना अब हमारा कोई उत्थान और कल्याण करने वाले नहीं। आओ! कृपानिधे आओ! हमारी इस तुच्छ प्रार्थना को स्वीकार करो। हमारे देश में ब्राह्मण वेद विद्या में निपुण तथा ब्रह्मवर्चसी उत्पन्न हों तथा राजा और प्रजा के लिए महाशूरवीर धनुर्विद्या विशारद राजपूत क्षत्री बलवान और महारथी पैदा हों। दूध अमृत के स्रोत भर देने वाली गौएं। हृष्ट–पुष्ट बैल, वेगगति वाले घोड़े, सद्व्यवहार करने वाली स्त्रियां रथ पर स्थित होने तथा शत्रुओं पर विजय पाने वाले सभा के, योग्य सुसभ्य युवा पुरुष उत्पन्न हों। इस राजा के राज्य में विद्वानों का सत्कार करने वाले सुखों के देने वाले विशेष ज्ञानवान तथा शत्रुओं

को नष्ट–भ्रष्ट करने वाले प्राणी उत्पन्न हों। जब–जब हम चाहें वर्षा और मीठे फलों से युक्त औषधियां हमें प्राप्त हों तथा हमारी सम्पूर्ण कामनायें परिपूर्ण हों।

–टेकचन्द (प्रभु आश्रित)

विशेष–कथन

विवाह होने से पूर्व कन्याओं को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। अच्छा यही है कि रजस्वला होते ही इसे पढ़ लें।

सत्यमेव जयते

।। ओ३म ।।

गृहस्थाश्रम-प्रवेशिका

प्रथम सोपान

ज्ञान प्रकाश एक प्रसिद्ध आर्य बड़े सुशील और धर्म का जीवन व्यतीत करने वाले थे। उनके एक पुत्र प्रभु ने दिया जिसका नाम उन्होंने सत्यव्रत रखा और दिल में यही भावना रखकर कि यह बालक सत्य का पालन करने वाला हो। सदा सत्य कार्यों में इसकी प्रवृत्ति हो और सत्य के लिए अपनी आयु में व्रती रहे। सत्यव्रत आज बड़ा हुआ, कल बड़ा हुआ। उसे पूर्व एक विद्यालय में प्रविष्ट कराया। वहां वह बालक पढ़ गया। तदन्तर एक स्कूल में प्रविष्ट हो गया, बालक होनहार था, ज्ञानप्रकाश भी घर से अच्छे रजे हुए आदमी थे, बहुत सी सगाईयां आती रहीं, परन्तु वह निषेध कर देता रहा कि मैं अपने बालक का पूरे पच्चीस वर्ष में ही विवाह करुंगा और करुंगा भी तो किसी आर्य घराने में, जहां की कन्या विदुषी और पूर्ण आर्या होगी। चाहे उस घर से कुछ भी प्राप्त न हो।

सत्यव्रत बी.ए. में पहुंच गया। अब महा-धनाढ्य पुरुषों की ओर से धन-दौलत, मोटरों का प्रलोभन दिया जाने लगा कि किसी प्रकार बालक की सगाई हो जावे, परन्तु ज्ञानप्रकाश दृढ़ विचारों का पुरुष था किसी की न सुनी। सत्यव्रत बी.ए. हो गया। माता-पिता का केवल यही एक लड़का था। कुछ तो दीर्घायु में प्रविष्ट हुआ और कुछ पहले विद्यालय में

अध्ययन करते रहने से (स्कूल में हिन्दी न होने से) फिर से उर्दू की पहली श्रेणी से पढ़ना आरम्भ करना पड़ा। यद्यपि उसने दो श्रेणियों की परीक्षा इकट्ठी उत्तीर्ण की तथा बी.ए. तक उसकी आयु चौबीस वर्ष की हो गई। अब पिता को भी विचार आया कि मैं स्वयं कहीं योग्य कक्षा का अन्वेषण करूं। कई स्थानों पर फिर अन्त में एक स्थान पर उसे एक आर्य देवी दयावन्ती का पता लगा कि वह है तो विधवा, कन्या उसकी एक है जिसका नाम सन्तोष कुमारी है, और वह कन्या बड़ी विदुषी आदर्श है। दयावन्ती भी चाहती है कि मैं किसी आर्य घराने में इसका विवाह करूं। जहां लड़के वाले को किसी प्रकार का प्रलोभन न हो। मेरी कन्या सुखी रहे और जो शिक्षा श्रम करके मैंने उसे दी और दिलवाई है उसका सदुपयोग गृहस्थ जीवन में हो सके। पूछता–पूछता ज्ञानप्रकाश वहां पहुंच गया। दयावन्ती और उसकी कन्या दोनों सायंकाल के समय यज्ञ कर रही थीं। यज्ञ के उपरान्त कन्या ने अति प्रेमपूर्वक प्रार्थना की तथा अत्यन्त मधुर स्वर से आरती गाई, ज्ञानप्रकाश तो मुग्ध हो गया। शान्ति पाठ के पश्चात् दयावन्ती ने उठकर नमस्ते की तथा कन्या ने आसन दिया। माता ने कुशल समाचार पूछा और लड़की जल और तौलिया हाथ धुलाने के लिए ले आई। ज्ञानप्रकाश यह अवस्था देखकर मन में प्रभु से प्रार्थना करने लगा कि हे मेरे प्रभु! सब कठिन कामनाओं को सिद्ध करने वाले विधाता! अब अवसर आ गया है, मेरी सहायता करो, मेरी समस्या को

सुलझाओ। ज्ञानप्रकाश ने हाथ धो लिये। माता थाली में थोड़ी सी मिठाई ले आई और आगे धर दी। ज्ञानप्रकाश ने खाकर हाथ पोंछ लिए, तदन्तर परस्पर वार्तालाप प्रारम्भ हुआ :—

दयावन्ती—भ्राता जी, बड़ी कृपा की इस दीन की कुटिया को सुशोभित किया।

ज्ञानप्रकाश—बहिन जी, क्या आप मुझे पहिले पहचानती थीं?

दया.—नहीं जी।

ज्ञानप्रकाश—फिर मेरी इतनी सेवा सुश्रुषा आपने निष्कामभाव से की, जैसे कोई मित्र की या सम्बन्धी की करता है।

दया.—घर आया अतिथि पूजा और सत्कार के योग्य होता है। उसकी पदवी मित्र और सम्बन्धी से बढ़कर है। यही प्राचीन आर्य सभ्यता है।

ज्ञान.—यह पुत्री कौन है?

दया.—यह मेरी कन्या है। सन्तोषकुमारी इसका नाम है। पिता की छत्रछाया से वंचित है। मैं अध्यापिका थी। जहां तक मुझसे बन पड़ा मैंने इसे विद्योपार्जन कराया और थोड़ी सी चिकित्सा भी जो गृहस्थ के लिए आवश्यक है इसे सिखा पढ़ा दी। जितना मैं जानती थी ऋषि ग्रन्थ से थोड़ी बहुत जान पहचान करा दी।

ज्ञान.—सन्तोष कुमारी की आयु क्या है?

दया.—पन्द्रह वर्ष की हो गई है।

ज्ञान.—इसके सम्बन्ध का कोई विचार है?

दया.—मैं तो स्त्री हूं। बाहर आई गई नहीं। कन्या की योग्यता सुशीलता को देखकर पचारें (सगाईयां) आती रहीं। कोई साहूकार परन्तु अनार्य, कोई आर्य घराना किन्तु लड़का नास्तिक और कोई प्रलोभी। मैंने अब तक यही उत्तर दिया कि कन्या अभी छोटी है सोलह वर्ष की आयु में सगाई और विवाह करूंगी जहां भाग्य होगा! अब तक तो मैं निश्चित थीं कि कन्या छोटी है, अब मुझे भी चिन्ता होने लगी है।

ज्ञानप्रकाश इतना सुनकर उठने लगा और कहा अच्छा बहिन जी आज्ञा। क्षमा करना मैंने आपको कष्ट दिया।

दयावन्ती—भ्राता जी! आप ने तो सब कुछ पूछ लिया और अपना परिचय देने के समय आज्ञा मांगते हैं। आप कोई साधु संन्यासी तो हैं नहीं जो आप के घर आदि के बारे में न पूछा जाये। आप भी तो हमारी तरह गृहस्थी हैं। अपना परिचय दीजिये। कैसे सुभागमन हुआ?

ज्ञान.—बहिन जी! मेरा नाम ज्ञानप्रकाश है। और मैं भी आपके रोग में ग्रस्त हूं और अब चिन्ता हुई है कि कन्या ढूंढूं।

दया.—अच्छा महाशय ज्ञानप्रकाश आप हैं। सत्यव्रत आपका बालक है।

ज्ञान.—आप को यह ज्ञान कैसे हुआ।

दया.—आप तो प्रसिद्ध आर्य हैं। आपने शुद्धि के समय अनेक कष्ट झेले। आपका बालक हिन्दी प्रभाकर परीक्षा में सर्वप्रथम रहा। मेरी कन्या भी इसी परीक्षा में प्रविष्ट हुई थी

और वह दूसरी निकली। सन्तोष कुमारी! क्या तुमने सत्यव्रत को देखा हुआ है?

सन्तोष.—हां जी, मैंने देखा हुआ है।

ज्ञान.—बस बहिन जी, मैं निकला तो घर से इस अन्वेषण में था। बहुत स्थानों पर गया। पर सन्तोष नहीं पाया। आपका नाम सुना। यहां आया तो सचमुच जैसा सुना वैसा पाया और इस पुत्री सन्तोष कुमारी से तो मुझे पूर्ण सन्तोष है यदि आप भिक्षा मेरी झोली में डाल दें तो?

दया.—मैं अब द्वार पर आये अतिथि को निराश नहीं लौटाना चाहती। जब कि हम दोनों यही इच्छा रखते हैं। पर मैं निर्धन अध्यापिका हूं और यह बच्ची अनाथ है। मेरे पास पत्र—पुष्प भेंट के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा।

ज्ञान.—मैं आपका धन्यवाद गाता हूं। आपने मेरी समस्या को सुलझा दिया। चिन्ता दूर की। जिसने कन्या दे दी उसने सर्वस्व दे दिया। इस लखते—जिगर से बढ़कर और संसार में कौन सी सम्पत्ति है। परमात्मा का कोटिशः धन्यवाद है कि मेरे मनोरथ को सिद्ध किया। इस सम्बन्ध को वह सफल करें।

ज्ञानप्रकाश एवं दयावन्ती दोनों ने गायत्री मन्त्र का उच्चारण करके प्रार्थना की। दयावन्ती ने कुछ सगुन ज्ञानप्रकाश की झोली में डाला। सम्बन्ध की प्रारम्भिक रीति पूर्ण की गई। ज्ञानप्रकाश प्रसन्नता से उछलता हुआ झटपट घर पहुंच गया और आकर सब वर्णन कर दिया। सब घर वाले गली

मुहल्ला वाले प्रसन्न हुए। बधाइयां देने लगे। सत्यव्रत कुछ प्रसन्न हुआ और कुछ उदास। प्रातः माता ने जब सत्यव्रत को उदास देखा तो बोली, पुत्र! तू तो आज प्रसन्न हो, उदास क्यों है।

सत्य.–बस कुछ नहीं ऐसे ही।

माता–बेटा! कहो क्या इस सम्बन्ध से सहमत नहीं हो?

सत्य.–पिता जी बलवान जो ठहरे अपनी इच्छा से कर आए।

कन्या पता नहीं पढ़ी लिखी भी है या नहीं। कैसे विचारों की है–वर्तमान युग तो अनुकूल विचार चाहता है।

माता–तुम्हारे पिता बड़े बुद्धिमान हैं। कितनी सगाईयां आईं, न कीं। अब तो इतने दिनों से अन्वेषण में गये थे आखिर अच्छा स्थान देखकर ही आये होंगे। इतने में पिताजी भी आ गये। "क्या सत्य. क्या बात कर रहे हो?" सत्य. लज्जा और भय के कारण चुप हो गया। मुख नीचे कर लिया। हो भी क्यों न–आर्य पिता का पुत्र था।

पिता–पुत्र! स्पष्ट बताओ। कोई लज्जा की बात नहीं। सत्य. चुप रहा।

पिता–अच्छा तुम न बोलो, मैं ही पूछ लूं। क्या तुम असन्तुष्ट हो।

सत्य. की आंखों में अश्रु बहने लगे।

पिता–अच्छा तुम ही बताओ। तुम किस से विवाह करना चाहते हो। यदि कोई मन से ठानी हुई हो तो मुझे

बतला दो। मैं तुम्हें सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करूंगा।

बहुत देर के बाद सत्य. बोला–पिताजी है तो अभिमान की बात, पर आपने मुझसे न्यूनातिन्यून पूछना तो था। मेरी इच्छा के अनुसार तो मेरे अधिकार में नहीं कि मैं विवाह कर सकूं। अच्छा जो आपने किया सो शिरोधार्य है। मैं न आपका धर्म भंग करना चाहता हूं न उनका। मेरा जो भाग्य।

पिता–बेटा शाबाश! परमात्मा करे तुम्हारा भाग्य, भी अच्छा हो तुमने हम दोनों की लाज रख ली। मैं तो बेटा ऐसी कन्या चुन कर लाया हूं कि तुम मुझे धन्यवाद देते रहोगे। ऐसी कन्या का वर्तमान युग में मिलना कठिन है।

सत्य.–पिताजी आप ठीक क़ह रहे होंगे। परन्तु एक कन्या मैंने देखी जो गत वर्ष मेरे साथ परीक्षा में थी। मैंने किसी कुदृष्टि से तो उसे नहीं देखा, परन्तु जब और लड़कियां और अध्यापिकाएं परीक्षा भवन से बाहर उस कन्या की परस्पर असीम प्रशंसा कर रही थीं तो मैंने भी उसे एक बार देखने का प्रयत्न किया। केवल इसी भाव से कि ऐसी कौन सी लड़की होगी जिसके गुण यह सब गाती हैं। तो मैंने देख लिया पुनः मैंने किसी से उस कन्या के घर का पता पूछा। जब परीक्षा परिणाम निकला तो मैंने समाचार पत्रों में अपना नाम तो देखना था ही उसका भी देखा। मैं प्रथम रहा और वह द्वितीय नम्बर पर। भेद केवल मात्र एक अंक का था। उस दिन से मेरे मन में यह प्रबल इच्छा हुई कि यदि मेरे पिताजी ने मुझ से पूछा तो मैं यही कहूंगा कि यदि उस

कन्या से मेरा सम्बन्ध हो जाए तो अपने आपको सौभाग्यशाली समझूंगा।

पिता मन में बहुत प्रसन्न हुआ। पूछा उनका क्या नाम था।

सत्यव्रत–सन्तोष कुमारी।

पिता–उसकी मां का नाम दयावन्ती है क्या?

सत्य.–हां–हां आपको उसकी मां का नाम कैसे विदित हो गया?

पिता–बेटा! परमात्मान ने मेरी लाज़ रख ली। जहां मेरी समस्या सुलझ गई वहां तेरी चिन्ता भी दूर हुई। उसी से ही तेरी सगाई हुई। बिल्कुल उसी से ही सन्तोष कुमारी जो तुमने देखी और जो तुमसे दूसरे नम्बर पर रही उसी ही से तुम्हारा सम्बन्ध हुआ है। प्रभु का धन्यवाद गाओ।

द्वितीय सोपान

महाशय ज्ञानप्रकाश के चले जाने के बाद दयावन्ती अपने घर के अन्दर गई। सन्तोषकुमारी इस वार्तालाप के संमय अन्दर ही रही जैसे सभ्य कन्याओं का नियम है। (क्योंकि वह लड़की युवती थी, इसलिए वह अन्दर ही बैठी रही)।

दयावन्ती ने सन्तोष कुमारी से पूछा–क्या तू हमारी बातें सुन रही थी?

सन्तोषकुमारी–नहीं माता जी मेरा तो स्वभाव ही नहीं कि मैं बिना बुलाए किसी काम या बात में बाधा डालूं या भाग लूं।

दया.–तो क्या करती रही हो?

सन्तोष.—मैं एक आसन के अन्दर कशीदा निकाल रही थी।

दया.—क्या अपने पति को भेंट करने के लिए बना रही हो अथवा अपने दहेज के लिए तैयार कर रही हो?

सन्तोषकुमारी ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया और मुस्करा पड़ी।

दया.—आज मैंने तुम्हारी सगाई कर दी ईश्वर के भरोसे, उसी लड़के, अर्थात् सत्यव्रत, जो तुमसे प्रथम रहा, यह सज्जन उसी के पिता थे। वह आदमी बड़े हैं और हम छोटे हैं, परन्तु हम दोनों के विचार एक जैसे हैं और वह तुम पर बड़े प्रसन्न हो गए हैं। ईश्वर करे कि वह लड़का भी तुम्हारे विचारों के अनुकूल हो। आज से मेरी एक बात ध्यान में रख लो, अब यह एक वर्ष तुम्हारी तैयारी का है। पराये घर या उसे अपना घर कहने के लिए अपने आप को ऐसा बना लो, कि जैसा मैं तुम्हें सदा चाहती हूं वैसे वे भी सारे परिवार वाले तुम पर न्यौछावर हो जायें।

सन्तोष.—माता जी! वे तो मेरे जो भाग्य होंगे, परन्तु क्यों तुझे पृथक् करने की ठान ली है? आप भी अकेली हो जायेंगी और पीछे आप किससे बात—चीत करेंगी? मैं तो वैसे ही दिन बिता देती, पढ़ने—लिखने में व्यग्र रहती और आपका साथ भी बना रहता।

दया.—कन्याओं को घर में बैठना अति कठिन है। राजा महाराजा भी न बिठा सके, मैं निर्धन विधवा स्त्री क्या चीज

हूं। कन्या होती ही दूसरे घर के लिए है।

यही संसार की मर्यादा चली आती है।

सन्तोष.—तो फिर मुझे जैसा कहोगी, वैसा करूंगी, जैसा सिखाओगी वैसा सीखूंगी। मैं चार अक्षर पढ़ सकती हूं, सीना पिरोना भी जो आपने सिखाया। सेवा में उपस्थित करूंगी।

दया.—पुत्री! जीवन का उद्देश्य तो यह नहीं, यह तो जीवन का आमोद प्रमोद है। कमाना और पकाना तो खाने के लिए है। खाना, पीना अथवा पहनना शरीर की रक्षा के लिए है और शरीर अपने सब कार्य साधनों सहित आत्मा के मुक्त कराने के लिए है। यही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है।

सन्तोष.—पन्द्रह वर्ष की मैं हो गई। माता जी! जब आप जानती थीं तो मुझे उस उद्देश्य में क्यों न प्रविष्ट किया। व्यर्थ में ऊपर की बातें सिखाती रहीं। अब एक वर्ष में क्या बनां लूंगी? सीखूंगी अथवा आचरण करूंगी।

दया.—पुत्री! जो बातें पहले आवश्यक थीं वह तुझे पहले सिखाईं। अब इसकी बारी है। भला बाल्यावस्था में तू गुड्डियों से प्यार करती थी या पढ़ने से?

सन्तोष.—गुड्डियों से! तब तो मुझे समझ न थी।

दया.—बस बेटी इसी तरह है। जीवन का उद्देश्य भी अब समझ सकोगी। पूर्व कठिन था। जैसे महत्तम समापवर्त्तक (आदे आजम) निकालना हो या सीखना हो तो भाग (तकसीम) का नियम पहले विदित होना चाहिए और भाग से पूर्व गुणा (जर्ब) और गुणा से पूर्व शेष और जोड़ (तफरीक और जमा)

और जोड़ से पूर्व पहाड़े और पहाड़ों से पहले दो की संख्या जाननी होती है वैसे यह भी समझो।

सन्तोष.—फिर उस जीवन उद्देश्य का साधन क्या है?

दया.—त्याग और प्रेम।

सन्तोष.—किस वस्तु का त्याग और किससे प्रेम।

दया.—त्याग और प्रेम का आरम्भ कन्या से पहले है। माता अपनी कन्या को बड़े लाड प्यार से पालती है सब प्रकार से साधन ऐश्वर्य अपनी कन्या के सम्मुख उपस्थित करती है और कन्या भी माता तथा उसके पदार्थों से बड़ा प्यार करती है। परन्तु जब उसकी आयु पूरी हो जाती है उसे ऋतु आने लगता है अर्थात् वह ऋतुमती होती है। तब उसे पति को प्राप्त करने की उत्कण्ठा तथा माता के और माता के ऐश्वर्य के त्याग का भाव उसके मस्तिष्क में समा जाता है।

ऋतु का अर्थ है ज्ञान मति का अर्थ है बुद्धि अर्थात् उसकी बुद्धि में ज्ञान उत्पन्न होता है त्याग और प्रेम का, इसको ऊंचे आदर्श पर ले जाओ। पति हैं परमात्मा जैसे ब्रह्माण्डपति। पति को पुरुष कहते हैं और माता है प्रकृति। जिन लोगों ने जब अपने जीवनोद्देश्य को समझा तब प्रकृति माता का त्याग और पुरुष पति का प्रेम प्राप्त किया और इसमें एक और रहस्य है।

त्याग का अर्थ बिल्कुल छोड़ देने का नहीं। जब तक मनुष्य इस शरीर में है, शरीर प्रकृति का बना हुआ है तब तक तो प्रकृति कैसे त्याग कर सकेगी? भावार्थ यह है कि

जैसे कन्या अपनी मां के घर को त्याग कर पति के पास चली जाती है फिर भी माता उसको चीजें भेजती रहती है और वह माता के पास आती जाती भी रहती है, परन्तु वह माता की नहीं कहलाती अर्थात् उसे माता और माता के ऐश्वर्य की न आशा है, न ही उस पर रहती है, न उसके पदार्थों से ममता है। उसे आश्रय है तो केवल पति का। सम्पत्ति की इच्छा है तो पति से। भावार्थ–वह पति की और पति उसका बन जाता है। ऐसे ही जीवनोद्‌देश्य समझो।

मनुष्य इस प्रकृति को आश्रित नहीं बनाता, न प्रकृति से ममता करता है। प्रकृति के पुरुष–पति से अपनी इच्छा, अपनी धुन, अपना मिलाप और उसी पर आश्रित रहता है। जिन लोगों ने मनुष्य जन्म पाकर अपने जीवनोद्‌देश्य को नहीं समझा तथा संसार को विषय भोगों का स्थान मान लिया, वे आवागमन के चक्र में फंसे रहे। कभी विष्ठा के कीड़े बने, कभी कुत्ता गधा, बैल और हाथी बने। कभी भंगी, चमार और कभी राजा ऋषि मुनि बने मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है। बड़े पुण्य कर्मों का फल है। सब योनियां मनुष्य से निकृष्ठ हैं। वे भोग योनियां हैं। मनुष्य योनि कर्म और भोग दोनों है। संसार में कई प्रकार के लोग हैं। कई पेट के जाल में फंसे हुए हैं, कोई विषय विलास के पीछे पड़े हुए हैं। कोई धनमान की उपलब्धि में दिन रात निरत हैं। किसी विरले सौभाग्यशाली को ही इस आवागमन से निकल पड़ने की चिन्ता होती है। मैंने तो पुत्री सब दुःख–सुख देख लिए जब

तुम्हारे पिताजी जीवित थे। बड़े सुखार्थी थे। संसार का कोई ऐश्वर्य नहीं जिसका हमने आनन्द न उठाया हो। बड़ा परिवार था, बड़ी मानमर्यादा थी। बड़ी जायदाद और सम्पत्ति थी। सब एक–एक करके छिन्न–भिन्न हो गये। धन माल भी भोग विलास में नष्ट हो गया। कहीं व्यापार में गुमास्तों को हानि, तो कहीं पदार्थों कभी कीमतों में घाटा। नौकर चाकरों ने खूब हाथ रंगें अन्तिम समय आया तो हम दो ही रह गये तथा एक मकान, शेष सर्व नष्ट हो गया। तुम्हारे पिता को सुखी जीवन व्यतीत करने का कारण कर्म करने का साहस नहीं था। बड़ा आदमी कहलाने के कारण छोटा मोटा काम भी नहीं करना चाहते थे। किसी की नौकरी करना भी उन्हें अभीष्ट नहीं था। यद्यपि वह बड़े कुलीन थे। जब तक मेरे भूषणों से काम चल सका चलाते रहे। मान से रहना पसन्द करते थे, नौकर भी घर में अवश्य रखा करते थे। आये गये अतिथि भी बने रहते थे। मुझमें भी काम करने का स्वभाव न था। माता पिता धनवान थे, बहुत सहायता करते रहे। माता मेरी सौतेली थी। भाई भी सौतेली माता से थे। इधर हम निर्धन हो गये, उधर पिताजी मर गये। सौतेली माता और भाईयों ने मुख देखना भी छोड़ दिया। विपत्ति में कोई किसी का साथी व सहायक नहीं होता। अपने कर्म ही साथ देते हैं। आवश्यकता आविष्कार की जननी है (जरूरत ईजाद की मां है) बाल्यावस्था में मेरी सौतेली मां वैर से मुझ से सब काम कराती थी और मैं घर के सब कामों में चतुर हो गई थी।

अब अवसर आने पर वही पुराने संस्कार जागृत हुए और मैंने नौकर के स्थान पर स्वयं काम करना आरम्भ कर दिया। अपने हाथ से चक्की पीसना गोबर थापना, गाय सेवा, रोटी सब्जी सब कुछ बनती थी। तुम गर्भ में थी, तुम्हारे पिता रुग्ण (बिमार) हो गये। जब तुम ने जन्म लिया तब वह चल बसे। अब मेरा कोई आश्रय न था। उनके सुहृदय, मित्र सम्बन्धी जो आने जाने वाले थे, अब उन्होंने उस गली में आना जाना भी बन्द कर दिया कि कदाचित यह विधवा हमसे कुछ मांग न बैठे। मैंने तुझे ईश के आश्रय पाला। उसी निर्धनता में सन्तोष से समय व्यतीत किया, अतएव तुम्हारा नाम भी सन्तोषकुमारी रखा। वैसे ईश कृपा से तुमने मुझे आज तक कभी किसी वस्तु के लिए बाधित नहीं किया। जो वस्तु अच्छी या बुरी, थोड़ी या बहुत तुम्हें देती थी तुम उसी में सन्तुष्ट हो जाती थी। जब कभी मैंने तुझे कहा कि पुत्री! और दूं? तो तुमने कह दिया कि मुझे यही पर्याप्त है। यह सब कुछ सुनकर सन्तोष की आंखों में पानी भर आया और छमाछम गिरने लगा। हिचकी बन्ध गई। माता भी अपनी दुःखित आत्मकथा का स्मरण करके रो पड़ी। माता पुत्री दोनों गले चिपट कर खूब रोईं। तदुपरान्त प्रभु का धन्यवाद किया।

ईस कृपा से इस स्थान पर सरकार की ओर से पुत्री पाठशाला खुली, तो उस समय एक मात्र मैं ही इस स्थान पर पढ़ी हुई थी। नगर के चौधरी द्वारा मुझ से पूछा गया कि तुम

अध्यापिका बनोगी? इस पर मैंने प्रभु का कोटिशः धन्यवाद किया कि अब सुदिन बीतेंगे। वेतन मिलेगा, निर्वाह की चिन्ता नष्ट होगी। सम्पूर्ण दिन कन्याओं को पढ़ाऊंगी। सन्तोष के लिए भी आराम रहेगा। कन्याओं में खेलती पढ़ती रहेगी। इसी प्रकार जीवन के दिन व्यतीत किये। मुझे तो संसार के सम्पूर्ण रस नीरस मालूम होते हैं। एक रस है जो प्रभु से प्राप्त होता है।

सन्तोष.–(बड़ी प्रभावित हो चकी थी, एक तो घटना यथार्थ दूसरे माता के हृदय से निकली हुई, माता से बीती हुई) माता जी! फिर मुझे अपने जैसे चक्रों में न डालो। मैं भी प्रभु की ही हो के रहूंगी। उसी का भजन करूंगी।

दया.–न पुत्री न! सर्व आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है। सब आश्रम इसी के आधार पर हैं। गृहस्थ को जिन्होंने इसलिए अपनाया कि हम इससे मोक्ष की उपलब्धि करें, उन्होंने बड़े–बड़े संन्यासी महात्माओं को भी सुमार्ग दिखाया। गृहस्थ में विवाह के समय जो मन्त्र आते हैं, प्रतिज्ञाएं होती हैं, क्रियाएं कराई जाती हैं। यदि वर वधु उनका पूरा अनुष्ठान करें तो बस बेड़ा पार है। गृहस्थ तो स्वर्गीय आश्रम है नारकीय नहीं। समझने का फेर है। तू संस्कार विधि का भलीभांति स्वाध्याय कर ले और जो बात समझ में न आवे मुझसे पूछ और प्रतिज्ञा कर ले कि गृहस्थाश्रम को स्वर्गीय आश्रम बनाके दिखाऊंगी। शारीरिक चिकित्सा तो तू जानती ही है, उसे फिर पढ़ लो।

तृतीय सोपान

सत्यव्रत और उसके माता–पिता बड़े प्रसन्न हैं। एक दिन पिता ने सत्य. से कहा–पुत्र ! अब तो तुम्हारा उत्तरदायित्व बढ़ जाएगा। तू अब अपने गृहस्थ को सुखदायी बनाने के लिए सद् गृहस्थियों की जीवनियों का स्वाध्याय कर। संस्कार–विधि को भली भांति मन लगाकर पढ़ ले। हम तो जो हुए सो हुए। हमारा जीवन तो अविद्या, अन्धकार में व्यतीत हुआ। धन्य है कि मुझे ऋषि के प्रताप से आर्यसमाज का सत्संग मिल गया। तुम्हारी माता अनपढ़ होती हुई भी बड़ी सुशील और आज्ञाकारिणी है। परन्तु जैसा वर्तमान युग में हम उपदेशों में सुनते हैं। ऐसा उपदेश हमें गृहस्थ से पहले नहीं मिला। अब तो हमारी आशाएं तुम्हारे पर बन्धी हैं। ईश कृपा से तुम हिन्दी संस्कृत के भी कुछ ज्ञाता हो। अंग्रेजी के तो तुम बी.ए. हो ही, हमारी तो इतनी विद्या है ही नहीं। प्राचीन काल के पढ़े हुए हैं। सन्तोष कुमारी बहुत लिखी पढ़ी है। तुम्हें तो उससे अधिक ज्ञानवान होना चाहिए।

सत्य.–क्या गृहस्थ भी कोई बड़ी कठिन पुस्तक है जिसके अभ्यास की आवश्यकता होती है? सैकड़ों हजारों अनपढ़ आदमी विवाह करते हैं। खूब आनन्द से गुजरते हैं। क्या उन्होंने कहीं से गृहस्थ की विद्या सीखी है।

ज्ञानप्रकाश–उन्होंने शिक्षा ग्रहण नहीं की, तभी तो तुम से कहता हूं गृहस्थियों का जीवन तो दुःखों की खान बना हुआ है। पशुओं से भी उनका जीवन भ्रष्ट है। कभी उनसे तो

पूछो कि वे सुखी हैं या दुःखी?

सत्य.—यदि आप जानते थे कि गृहस्थ दुःख की खान है तो यह उपहार मेरे लिये ही चुनना था?

ज्ञान.—बतलाओ पढ़ना अच्छा है या बुरा?

सत्य.—बहुत अच्छा है। कौन कहता है कि बुरा है। कदाचित् मूर्ख इसे बुरा कहें।

ज्ञान.—क्या सभी पढ़ते हैं? या सब का जी चाहता है?

सत्य.—नहीं जिसके भाग्य में होता है, वही पढ़ता है।

ज्ञान.—गृहस्थ आश्रम पुण्य आश्रम है, स्वर्गाश्रम है, परन्तु उसके लिये जिसने गृहस्थ आश्रम को एक पवित्र आश्रम समझा।

दूसरे दिन सत्य. एक मित्र से मिले। वह मित्र एक कुलीन आदमी था, सज्जन था परन्तु विषय विकारों में ग्रस्त था। उसके दुराचरण को बाहर से कोई जानता न था। अपने गृहस्थ में विषय विकारी था। श्रेष्ठ लोगों से मेल मिलाप रखता था। सत्य. से कहने लगा, अच्छा मित्र! अब एक वर्ष तक पता लगेगा, होश ठिकाने आ जायेगा जब 'कनपाड़ी' पीछे लगेगी।

सत्य.—मैं आपकी बात नहीं समझा, कनपाड़ी क्या होती है?

मित्र—कनपाड़ी स्त्री को कहते हैं। स्त्री कान फाड़ देती है। जहां अब निश्चिन्तता से खेलते कूदते हो वहां तो होश ठिकाने हो जायेंगे।

सत्य.—तुम तो सब बातें जटिल कहते हो, पहेलियां

मालूम होती हैं। कुछ समझ तो आता नहीं। तुम तो मुझे सदा चिन्तित दिखाई देते हो और मुझे डराते हो। भला बतलाओ स्त्री कोई ऐसी बला है जो मुझे खा जायेगी?

मित्र––बाबा सचमुच स्त्रियां बुरी बला होती हैं प्रथम तो इनकी पहिचान बड़ी कठिन है। कहते हैं इसका भेद ब्रह्मा भी न जान सका। किसी सौभाग्यशाली को ही सुशीला देवी मिल गई तो उसके दिन अच्छे गुजर गये नहीं तो सम्पूर्ण आयु कष्ट झेलते–झेलते गुजरती है। वर्तमान युग में यदि स्त्री को वश में रखना है तो प्रथम 'कोकशास्त्र' का अध्ययन कर लेना चाहिए उसमें सब ढंग–रीतियां, विधियां लिखी हुई हैं। स्त्री न तो धन को चाहती है न रूप को, उसे तो केवल पुरुषत्व अभिप्रेत है। कोक–शास्त्र का ज्ञाता जो गृहस्थ का आनन्द स्त्री से लेता है–दूसरा क्या जाने? जैसे और विद्याओं के लिए शास्त्र हैं–न्याय, वैशेषिक, सांख्य योगादि ऐसे ही यह भी शास्त्र है। इसे कोकशास्त्र कहते हैं।

सत्य.–मैंने तो बी.ए. तक इस शास्त्र का नाम भी नहीं सुना, न पिताजी ने कभी वर्णन किया। कल बातें होती रहीं तो उन्होंने कहा कि गृहस्थ के सम्बन्ध में बड़ा उत्तरदायित्व होता है। संस्कार विधि और सद्गृहस्थियों की जीवनियों का अध्ययन करो।

मित्र–भोले आदमी गृहस्थ का मार्ग तो गुप्त मार्ग है। स्त्री और पुरुष एक ही घर में रहते हैं, बच्चे जानते हैं। किसको पता लगता है कि गृहस्थ करते हैं कि नहीं। इसे

संकोच से कोई नहीं बतलाता। माता पिता तो क्या कहें और समझाएं जैसे तुम्हारे पिता ने तुम्हें कह तो दिया कि संस्कारविधि पढ़ो। कोक—शास्त्र को लोग अच्छे नाम से नहीं याद करते। कोक—शास्त्र का जानने वाला यदि इस भाव से कोकशास्त्र को पढ़े कि मैं गृहस्थ को ठीक निभाऊ तो उसके लिए लाभदायक और जो विषय भोग के लिए पढ़े उसके लिए हानिकारक होता है। ऐसे विचारों वाला जब उसमें स्त्री को वश में करने का उपाय पढ़ता है तो परस्त्रियों को वशीभूत करने का प्रयत्न करता है। जिससे वह लोगों की नजरों में गिर जाता है। विद्या तो सब अच्छी हैं—जैसे विज्ञान बड़ी अच्छी वस्तु है। परन्तु एक मनुष्य विज्ञान इसलिए पढ़े कि वह ऐसे शस्त्र बनाए अथवा औषधियां तैयार करे कि दूसरों के ताले तोड़ने में शब्द तक न हो। यह तो अपना—अपना दृष्टिकोण हैं। तुम अच्छे आदमी हो! सज्जन की सन्तति हो। तुम तो इसलिए पढ़ोगे कि गृहस्थ जीवन कैसे चलाया जाय? बस संस्कार विधि भी पढ़ लो। मैं तो पढ़ा नहीं कि क्या लिखा हुआ है, जो तुझे बता सकूं। तुम स्वयं पढ़े लिखे हो पढ़ कर देख लोगे, दोनों ही पढ़ लो, कुछ वहां से कुछ यहां से मिल जायेगा। हां यदि सर्वसाधारण के न्याई ही धींगामस्ती गृहस्थ चलाना हो तो किसी शास्त्र के पढ़ने की आवश्यकता नहीं। जो भाग्य में होगा सो देखा जाएगा।

सत्य.—नहीं, मैं चाहता हूं कि गृहस्थ भी एक आदर्श बनाऊं और माता पिता भी यही चाहते हैं।

मित्र.–फिर क्या देरी है, अभी से तैयारी करो। एक वर्ष तक भली–भांति निपुण हो जाओगे।

अब सत्यव्रत की आंखें खुलीं कि मैं तो समझता था कि विवाह एक साधारण कार्य है। उन्होंने तो यह भी एक परीक्षा पास करने की श्रेणी बतला दी। यह तो बी.ए. से भी बढ़ कर हुई। संस्कारविधि उठाई और अध्ययन करने लगा। कोई भी बात उसे अच्छी नहीं लगी कि स्त्री और पुरुष दोनों लोगों के सामने ऐसी प्रतिज्ञा करें, एक दूसरे के हृदय को स्पर्श करें, क्या लज्जा न आएगी? अस्तु–पढ़ तो लिया पर रुचि न हुई। अब उस मित्र से जाकर कहा कि मुझे कोकशास्त्र मंगवा दो। उसने कतिपय दिनों में मंगवा दिया। सत्यव्रत मन लगाकर अध्ययन करने लगा। कोकशास्त्र की लेखनशैली और चित्रों के साथ–साथ विस्तृत व्याख्या से सत्यव्रत की आंखों में नशा चढ़ता गया।

परमात्मा रक्षा करें ! कुसंग का प्रभाव एक सरल प्रकृति मनुष्य पर कितना शीघ्र पड़ता है। मनुष्य यह न समझे कि मैं बी.ए., एम.ए. हो गया। शास्त्री या मौलवी फाजल हो गया ज्ञानी या स्नातक हो गया। वृद्धावस्था तक उसे सीखने की आवश्यकता है। कोकशास्त्र ने सत्यव्रत पर ऐसा जादू किया कि अब दिन रात विवाह के स्वप्न आते हैं। अच्छे घराने का है। सरलता से जीवन व्यतीत किया था। अब अपने जीवन में परिवर्तन की शनैः–शनैः रुचि उत्पन्न हो रही है। पहिले तो जैसा कपड़ा मिल जाता था पहिन लेता था, सुरमा लगाते

शर्म आती थी, तेल पाउडर लगाने को मन न चाहता था सादे बाल थे। शनैः—शनैः परिवर्तन होने लगा। माता पिता को ज्ञान न हुआ या उन्होंने ध्यान न दिया। कई मास गुजर गए। एक दिन पिता ने देखा कि सत्यव्रत तो ब्रह्मचारी दिखाई नहीं देता। इसका आकार गृहस्थियों सा बन गया है बाल बढ़ाए हुए, कन्धी घुमाई हुई, चीर निकाला हुआ हैं पिता ने पूछा कहीं बाहर जाने की तैयारी है?

पुत्र—नहीं, पिताजी !

पिता—जरा इधर तो आओ। सत्यव्रत पिता के समीप आया तो पिता को कपड़ों से सुगन्ध आई। पूछा! आज तेरे कपड़ों से सुगन्ध आ रही है। क्या लगाया है।

सत्य.—कुछ नहीं लगाया। पिता ने नाक लगाकर सूंघा तो कहा—पुत्र ! और सुगन्धि तो नहीं। अंग्रेजी सुगन्धित साबुन की सुगन्धं है। क्या यही लगाया करता है। हां पिता जी स्नान करते समय साबुन लगाता हूं। कदाचित् उसी की सुगन्धि होगी मुझे तो विदित होता ही नहीं।

पिता—आज तो चेहरा भी उतरा हुआ है। जैसा सुन्दर पहिले था। अब वैसा नहीं। कपोलों पर लालिमा तो है ही नहीं।

पुत्र—मैं तो अभी शीशा देखकर आ रहा हूं। मुझे तो कोई मुख में कृशता विदित नहीं होती।

पिता—पुत्र, मैं सच कहता हूं। तुम्हें कोई रोग हो गया है। मुझे बताओ उसका प्रतिकार किया जाय। यदि यही दशा

रही तो तुम विवाह के योग्य भी न रहोगे। रोग और ऋण छिपाने में बढ़ता है, यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है। मैं तुम्हारा पिता हूं। माता-पिता जैसा शुभचिन्तक मित्र सन्तान के लिए और कोई नहीं हो सकता। सन्तान के लिए माता पिता को जितनी चिन्ता होती है उतनी और किसी को नहीं। देखो हमारी सारी कमाई केवल तुम्हारे लिए है किसी और को तो हम नहीं देना चाहते तुम्हारे जीवन से ही हमारा जीवन है। तुम्हारे दुःख से हम कब सुखी हो सकते हैं। तुम ही तो हमारे जीवन के अवलम्ब हो, तुमने ही हमारे नाम को ऊंचा नीचा करना है।

पुत्र-पिता जी! सच जानिए मुझे ईश कृपा से कोई व्याधि नहीं है। न कोई व्यसन लगा हुआ हैं जैसे पहिले आपका मुझ पर विश्वास था अब भी वैसा ही विश्वास रखें।

पिता-पुत्र! तुम्हारी सब बातें विश्वस्त हैं, मुझे तुम्हारे आचरण में रत्ती मात्र भी सन्देह नहीं, परन्तु हाथ कंगन को आरसी क्या? बच्चों के दिल पहचाने जाते हैं। खुराक और पोशाक से और दिमाग पहचाने जाते हैं क्रिया और आचरणों से। तुम स्वयं ही कहो कि तुम अपने में पहिले से परिवर्तन पाते हो या नहीं।

पुत्र-हां! अवश्य।

पिता-यह परिवर्तन मन का है। अब तुम स्वयं ही अपना रोग बता दो नहीं तो मैं बताऊंगा।

पु-मुझे तो अपना रोग विदित नहीं होता। न मुझे जवर

न फोड़ा, फुन्सी न बवासीर न कोई पीड़ा खांसी दमा आदि। मैं कैसे कहूं कि मुझे कोई रोग है।

पिता—पुत्र! निसन्देह अभी कोई रोग नहीं, परन्तु रोग का कराण तो उत्पन्न हो रहा है। सब राग किसी न किसी निर्बलता से पैदा होते हैं तथा सब निर्बलताओं की जड़ है वीर्य की कमी। युवावस्था में जो सर्वप्रथम रोग पैदा होता है वह वीर्य क नाश हो जाना और गिरना। ज्यों ही वीर्य नाश होने लगा त्यों ही मुख से रक्तिमा काफूर होनी आरम्भ हुई। कपोल बीच में धंसने लगे, जैसे वृद्धों और रोगियों के होते हैं। तदन्तर सिर में पीड़ा, नेत्र ज्योति की निर्बलता अजीर्ण और पाचन—शक्ति की निर्बलता उत्पन्न हो जाती है। यदि बहुत ही ग्रस्त हो गया तो फेफड़ों में दोष और जिगर में विकार आ जाता हैं। यौवन पशुत्व का रूप धारण कर लेता है। बिना ज्ञान संयम नहीं हो सकता इसलिए मैं चिन्तित हूं। अब बताओ कि वीर्य में कोई दोष आया है या नहीं।

पुत्र लज्जावश मुख नीचे कर लेता है।

पिता—पुत्र! अब समय है, लजाओ नहीं। संसार में कोई बिरला ही अच्छा होता हैं नहीं तो बाल्यकाल में, यौवन में माता पिता की असावधानता या लज्जा के कारण शतप्रतिशत में वीर्य की हानि आरम्भ हो जाती है। मैं भी शायद तुमसे न पूछता जैसे आज तक नहीं पूछा। तुम पर विश्वास करता रहा। यह विश्वास भी मेरी अज्ञानता का फल है। संकोच से न पूछा कि बालक के सामने ऐसी बातें कैसे की जायें।

क्योंकि मैंने तुम्हें आदर्श गृहस्थी बनाना है। तेरा नाम इसलिए सत्यव्रत रखा था कि तू सच्चाई से अपने व्रत को पाल सके। यह रोग एकमात्र तुम्हें ही लगा यह शतप्रतिशत तो है। लजाने की कोई आवश्यकता नहीं। हां! मन में यह उत्कण्ठा पैदा करो कि मैं स्वस्थ बन जाऊं। स्वस्थ बना रहूं। स्वास्थ्य से प्रेम करना मेरा धर्म हो। केवल कुकर्म करने से ही वीर्य का नाश नहीं होता अपितु उसके बहुत से कारण हैं। नब्बे प्रतिशत तो स्वप्न दोष से वीर्य का नाश कर बैठते हैं और स्वप्न दोष भी कई कारणों से हो जाता है। इससे भयभीत होने की कोई बात नहीं।

पुत्र—हां पिता जी अब कभी—कभी स्वप्नदोष हो जाता है।

पिता—नहीं पुत्र! यह दुःख कभी—कभी का नहीं। सत्य कहने में लज्जा नहीं करनी चाहिए। रोग का छिपाना भयावह होता है।

पुत्र—यह दोष मुझे तीन चार माह से आरम्भ हुआ है। पहिले तो सप्ताह में एक बार होता था। मैंने परवाह न की। दूसरे माह में दो बार हो जाता था। तीसरे माह में प्रति दूसरे दिन। अब इस माह से तो प्रायः प्रतिदिन ही हो जाता है। शायद ही कोई दिन चूक जाये। यह सुनते ही पिता का कलेजा थर्रा उठा। कहा—पुत्र! प्रभु का धन्यवाद है कि शीघ्र ही इसका ज्ञान हो गया, नहीं तो तुमने तो संकोच से छिपाये रखना था। जिससे तुम मृत्यु शैय्या पर पड़ जाते, इससे तो राजयक्ष्मा भी हो जाया करता है। अस्तु! ईश्वर ने रक्षा कर

ली। क्या कभी विद्यार्थी अवस्था में भी स्वप्नदोष हुआ था?

पुत्र–होता तो था, परन्तु बहुत कम। कभी–कभी होता था। जिसका ज्ञान तक भी न होता था।

पिता–जानते हो यह रोग अब क्यों बढ़ गया।

पुत्र–नहीं पिताजी।

पिता–विचारों की अपवित्रता से, कुविचारों से, विवाह की अभिलाषा से।

पुत्र–कुसंगति मैं नहीं कर रहा, विचार मेरे अपवित्र नहीं, कोई और कारण हो तो हो। यह कारण तो पिता जी हरगिज नहीं।

पिता–पुत्र तुम्हारा दोष नहीं। यह दोष शिक्षा का है। जिस स्कूल, कालेज या विद्यालय में विद्यार्थियों को अपने जीवन का उद्‌देश्य नहीं बतलाया जाता और उसके अनुसार विद्या नंहीं दी जाती, वहां के विद्यार्थी विचारों की पवित्रता को क्या समझें। लोगों की आंखों में सज्जन होना कुछ और बात है और विचारों को अपने मन में पवित्र रखना कुछ और महत्व रखता है। मनुष्य तो अनेक कारणों से पाप करने से बचा रहता है। किसी को सरकार दण्ड का भय है, किसी को जाति, कुल और माता पिता की मान मर्यादा की लज्जा है। कोई निर्बल है। पाप करने का उसे साहस तक नहीं होता। शरीर से धन से या बल से विचारों में ही बुराई न आने पावे। पाप के विचार आने में जो अपनी आत्मा का अपमान समझे वही वास्तविक धर्मात्मा महात्मा है।

देखो पुत्र! एक मात्र शिक्षा का भी दोष नहीं, बहुत अंश में हमारा भी दोष है। बाल्यकाल में जितने भी दोष का समावेश बच्चों में होता है उनका निमित्त कारण माता पिता होते हैं और यौवन में जितने विकार आते हैं उनका कारण संगति या अध्ययन होता है। बहुत कुसंस्कार तो बच्चों में गर्भावस्था में ही आ जाते हैं। माता–पिता के अनुचित अश्लील काम–जन्य व्यवहारों से और बहुत कुछ माता पिता के अज्ञान से जब बच्चा गोदी में होता है। तत्पश्चात् बालकों का जीवन कुसंगति अथवा अश्लील पुस्तकों के अध्ययन से नष्ट–भ्रष्ट हो जाता है। अब मैं किसी बात के कहने में संकोच नहीं करूंगा। सब स्पष्ट तुम्हें बता दूंगा। क्योंकि आगे जाकर तुमने पिता बनकर सन्तान पैदा करनी है। पहले तुम ही बताओ कि अब तुम्हें स्वप्नदोष आहार के अधिक खा जाने से होतां है अथवा किसी व्यक्ति का रूप सामनें आ जाने से होता है।

पुत्र–रूप सामने आता है।

पिता–लड़का या स्त्री का।

पुत्र–स्त्री का।

पिता–क्या तुम उन स्त्रियों को पहचानते भी हो।

पुत्र–नहीं, रूप स्त्री का होता है परन्तु मैं जानता नहीं कि कौन है और बाद में वह रूप मुझे भूल जाता है।

पिता–अच्छा पुत्र, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। शीघ्र इसका प्रतिकार करना चाहिए। कभी लड़के का भी रूप

दिखाई दिया।

पुत्र–अब तो नहीं, परन्तु स्मरण आता है कि विद्यार्थी अवस्था में कभी–कभी लड़के का रूप भी आ जाता था।

पिता–वह लड़का भी विदित था या अविदित?

पुत्र–वह लड़का परिचित रूप वाला आता था कि यह अमुक है।

पिता–वह बालक वास्तव में दुराचारी होता था या तुम्हारी न्याई सदाचारी?

पुत्र–वह बालक बिल्कुल मेरी तरह सदाचारी, बड़ा सरल और वह बड़ा सज्जन रहा और अब भी है।

पिता–अच्छा! अब मैंने जान लिया।

पुत्र– वह क्या कारण? उन स्त्रियों का रूप तो याद नहीं और लड़के का रूप याद रहा और आपने ऐसे प्रश्न किये मैं क्या कहूं।

पिता–विस्तृत रूप में तो मैं फिर समझाऊंगा। इसका कारण केवल यह है कि स्त्रियों के स्वप्न का आधार तो किसी अश्लील पुस्तक का अध्ययन है। लड़के के रूप को याद रहना निश्चित ही संगति का फल है।

चतुर्थ सोपान

सन्तोष कुमारी ज्यों–ज्यों संस्कार विधि का स्वाध्याय करती है त्यों–त्यों उसमें नम्रता और पवित्र विचार बढ़ते जाते हैं। उसे एक–एक मन्त्र को पढ़ते और अर्थ पर विचार करते हुए बड़ा आनन्द आता है। एक दिन माता ने पूछा–पुत्री!

स्वाध्याय से कुछ समझ में आया?

सन्तोष कुमारी—माता जी, स्त्री पुरुष के बोलने में तो मानो फूल झड़ते हैं। वाणी में इतनी मधुरता, कोमलता और प्रेम भरा है कि स्त्री तो पुरुष का सखा और सच्चा मित्र है। मित्रों का सा व्यवहार है। कहीं भी ऐसी आज्ञा नहीं कि पुरुष स्त्री के साथ कटु भाषण करे अथवा स्त्री पुरुष को तीक्ष्ण दृष्टि से देख सके। हमारे पड़ोस में तो प्रतिदिन दंगा लड़ाई रहती है। ऐसा गृहस्थ तो नरक है इससे तो कुंवारापन वा रंडेपा अच्छा है।

माता—अच्छा पुत्री! सब कर्मों की गति है, ईश्वर करे तुम्हारे कर्म अच्छे हों।

सन्तोष—नहीं माताजी! मैंने तो वेद आज्ञा की अपेक्षा से कहा है। अपना सिर खाएं, हमें क्या।

माता—ओ हो! पुत्री, क्या कहा? अभी तो तुम प्रशंसा कर रही थी कि बोलने में वाणी में फूल झड़ते हैं और बोल क्या बैठी। इतना महान् अपशब्द।

सन्तोषः वह तो मैंने स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में कहा था।

माता—पुत्री! वाणी तो वही है। जिसके लिए वेद की ऐसी आज्ञा है। जो दूसरे के लिए शब्द तुम्हारे मुख से निकला वह तो तुम्हारे अन्दर था ही, कहीं बाहर से तो आया नहीं। अन्दर वाली वस्तु बाहर निकल कर ही रहेगी। जब कोई और न मिलेगा तो अपने लिए ही निकलेगी। पुत्री! मैंने तुझे समझाया था कि जीवन का उद्देश्य आवागमन के चक्कर

से छूटना है और उसका साधन है त्याग का प्रेम। अब तुम्हारे शब्द पड़ोसी के लिए तो प्रेम से ही निकले। अपने जीवन को त्याग और प्रेम के अन्दर ढाल दो। गृहस्थ तो केवल आदर्श है। इसे तो विशाल करना है।

वाणी शरीर में एक कन्या है। सब इन्द्रियां बाहिर हैं परन्तु इसे परमात्मा ने अन्दर रक्खा है। यह कन्या भी साधारण नहीं, राजकन्या है। बाहिर ओष्ठों का कोट है और बत्तीस दांत रूपी द्वारपाल संगीनें उठाए सफेद वर्दी में खड़े हैं। सिपाहियों की वर्दी तो काली और भयावह होती है। कालापन तम का चिन्ह है तथा सफेदपन सत्य का चिन्ह है। जिस प्रकार कन्या का जीवन पवित्र होना चाहिए उसी प्रकार वाणी व्यवहार भी पवित्र होना चाहिए। कन्या भी देवी कहलाती है और वाणी भी देवी है। जैसे कन्या को गौ कहा जाता है वैसे ही वैदिक परिभाषां में इस वाणी का नाम भी गौ है। कुमारी कन्या ब्राह्मणी के समान गिनी जाती और वाणी को भी ब्राह्मणी कहा गया है। अतएव वाणी की हत्या करने वाले को गौहत्या, ब्रह्महत्या का भागी समझना चाहिए। मनुष्य के शरीर में यही वस्तु उसका स्वत्व है। शेष जितनी योनियां हैं वे सब बेजबान हैं।

आज तो संसार का चक्कर ही बिगड़ गया। जितना निरादर, जितना पाप, जितनी हत्या इस वाणी की होती है उतना दुर्व्यवहार शरीर के किसी और अंश से नहीं किया जाता। इसीलिए "नानक दुखिया सब संसार" उक्ति प्रसिद्ध

है। बस मैं अधिक नहीं कहना चाहती। तू बड़ी आज्ञाकारिणी कन्या है पढ़ी, लिखी तथा सुशील है। कन्यावत् इसको समझ ले।

सन्तोष–माता जी! क्षमा करें। मैंने आपके हृदय को बहुत हिंसा पहुंचाई। भविष्य में मैं बहुत सावधान रहूंगी। फिर भी प्रभु की कृपा है कि समय पर माता के सम्मुख यह दोष विदित हो गया तथा भविष्य के लिए उत्तम उपदेश उपलब्ध हो गया। संस्कार विधि तो मैंने अपनी ओर से भली–भांति देख ली। विवाह में पुरोहित भी तो समझाते हैं और अधिक समझ आ जाएगी। परन्तु जो बातें और आवश्यक हों जिनका संस्कार विधि में वर्णन न हो तथा स्त्रियों के लिए परमावश्यक होवें वह भी आप मुझे बताएं।

दयावन्ती–पुत्री! यह अच्छा कहा, जिन बातों की नवविवाहित स्त्रियां आज कलं उपेक्षा कर छोड़ती हैं वह तो मैं तुमको समझा देती हूं। इन बातों की अत्यावश्यकता है और न ही किसी का कहना मानती, सुनती हैं। कन्या के युवावस्था में प्रवेश करने का ऋतु एक चिन्ह है कि जिसे ऋतु रजोदर्शन, मासिक–धर्म तथा हैज आदि कहते हैं। जो कि इस अवस्था में आने लगता है। मासिक धर्म इसलिए कहते हैं क्योंकि वह प्रतिमास आता है जिन स्त्रियों को ऋतु नहीं आता उन्हें प्रायः सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती। जिनको न्यूनाधिक आता है या ठीक तिथि मास तक नहीं आता तो उसे भी रोगी गिना जाता है। जब ३६ बार हैज

(ऋतु) आ चुके हों तो कन्या पूरी युवती और विवाह के योग्य होती है।

प्रत्येक देश के जल, वायु खान—पान और रहन सहन के आधार पर कोई कन्या शीघ्र और कोई कुछ देर में लगभग १२ वर्ष की आयु में रजस्वला होती है। कई कन्यायें १० तथा ११ वर्ष में भी रजस्वला होती सुनी गई हैं और कई १७ वा १८ वर्ष की आयु तक जाकर रजस्वला होती हुई पाई गई हैं। परन्तु बहुत कम। अधिकतर १२, १३ वर्ष की आयु में ही प्रायः ही मासिक धर्म से ही होती हैं। खानपांन के गर्म, तामसी या राजसी होने पर अथवा नाच रंग आदि कामोत्पादक कथा वार्ता के सुनने वाली और काम के विचार रखने वाली कन्यायें प्रायः शीघ्र ही ऋतुमति हो जाती हैं। इस मासिक स्राव के अवसर को रजोदर्शन तथा ५० वर्ष की आयु के लंगभग सर्वथा बन्द होने को रजोनिवृत्ति कहते हैं।

कई ऐसी कन्याओं के उदाहरण मिलते हैं कि जिनको यह भी ज्ञान नहीं होता कि स्त्री जीवन में मासिक रक्त—स्राव भी एक अवश्य तथा स्वाभाविक स्त्री की जननेन्द्रिय का धर्म है। कई अबोध कन्यायें इस स्राव को स्वाभाविक न समझकर इसके रोकने का पूरा—पूरा प्रयत्न करती हैं।

एक अमेरिकन डाक्टर ने इसी प्रकार की एक अबोध कन्या की घटना का वर्णन किया है। वह लिखता है कि "उच्च विचार की कन्या के पिता उसके मासिक समय में अत्यन्त पीड़ा पीड़ित होने पर चिकित्सार्थ मेरे पास आये।

कन्या को उस समय तीव्र एवं असाध्य दर्द हो रहा था। रक्त स्राव बहुत ही कम मात्रा में था, उसकी इस तीव्र वेदना का मुझे कोई विशेष परिज्ञान न हुआ। कन्या की आयु लगभग १७, १८ वर्ष थी। वह कुमारी थी, इसलिए स्वाभाविक लज्जा वश उसने मुझे असली बात नहीं बताई, दवाई दी गई परन्तु कोई लाभ न हुआ। एक दिन उसकी दशा अधिक बिगड़ी तो मुझे पुनः बुलाया गया तो देखा कि उसकी दशा बड़ी शोचनीय थी। वह बिचारी बुरी तरह कराह रही थी। उसी कराहने की दशा में वह बेहोश हो गयी। थोड़ी देर में जब होश हुआ तो अनुचित लज्जा त्याग कर उसने मुझसे कहा कि "डाक्टर! यदि तुम्हारे पास इस रोग की कोई दवा नहीं है विष तो है? मुझे कम से कम एक मात्रा विष की ही दे दो।"

मुझे उसके करुणाजनक वचन सुनकर अपने ऊपर अश्रद्धा तथा अपने कार्य पर अत्यन्त क्रोध हुआ। लेकिन इस क्रोध से क्या हो सकता था? उस कन्या का यह रोग विष से था। कई डाक्टरों का ईलाज भी कराया जा चुका था। सोच समझकर मैंने उसके पिता से कह दिया कि इसका विवाह शीघ्र कर देने से इसके स्वस्थ होने की आशा है।

दैववशात् कुछ मास बाद उस कन्या का मेरे ही साथ विवाह संस्कार हो गया। उचित उपचार से उसका रोग दूर हो गया। उचित उपचार से उसका रोग दूर हो गया। रोग के कारण विषय में जब पूछा गया तो देवी ने कहा कि जब

मैं १५ वर्ष की थी तो समझती थी कि मासिक रक्त–स्राव पति के संयोग हो जाने पर ही हुआ करता है और इससे पूर्व हो जाए तो समझना चाहिए कि कन्या आचरणहीन है। जब दो वर्ष पश्चात् मासिक रक्तस्राव शुरू हुआ तो मैं डर गई यद्यपि मैं जानती थी कि मैं पवित्र हूं परन्तु मैंने सोचा कि मेरे सम्बन्धी लोग क्या कहेंगे? इसलिए मैंने इस स्राव को ६ मास तक बराबर बर्फ के टुकड़े रखकर और ठंडे पानी के टब में बैठ कर रोकना चाहा। दो मास तक रक्तस्राव बहुत ही कम और फिर बिल्कुल बन्द हो गया। ६वें मास में यह बड़े जोर का दर्द और थोड़ा थोड़ा स्राव फिर होने लगा। तब मैं इसे न छिपा सकी।' अतः इन दिनों में स्त्री को चाहिए कि–

१. रजस्वला होने के प्रथम दिन से लेकर अन्तिम दिन तक इन सब दिनों में स्त्री ब्रह्मचारिणी रहे।

२. पुरुष स्त्री का और स्त्री पुरुष का स्पर्श तक भी न करे।

३. रजस्वला स्त्री के हाथ से छुआ पानी तक भी न पिये।

४. वह स्त्री कुछ भी काम न करे। किन्तु एकान्त सेवी रहे। प्राचीन काल में देवियां बच्चों को भी नहीं छूती थीं अपितु उन्हें कह देती थी। मुझे हाथ न लगाना, भंगन ने अशुद्ध कर दिया है (बच्चों को समझाने की यह एक चतुरता सोची थी) हाथ पर या मिट्टी के पात्र में अथवा पत्तों की पत्तल पर रोटी खाती थीं। मुञ्ज की बनी या बानों की बनी पीढ़ी पर बैठती थीं।

५. शीतल पानी को नहीं छूना।

६. तीन दिन पर्यन्त स्नान न करना! नहीं तो नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिससे फिर आपरेशन कराने तक की स्थिति हो ज़ाती है। जो स्त्रियां श्रम कार्य नहीं करतीं ठण्डे पानी या स्नान करने सें प्रायः उनका रक्त बन्द हो जाता है। सिकुड़ कर वरम सी बन जाती हैं या बट्टा सा बन जाता है, फिर दूसरे मासिक धर्म पर जब रक्त आता है तो उनको रुकावट हो जाती है। ब्राहिर नहीं निकल सकता तब उदर में पीड़ा होने लगती है। कइयों को तो मूर्छा आ जाती है तथा एक प्रकार हिस्टीरिया सा बन जाता है। आज कल नगरों में स्त्रियों में श्रम करने का साहस रहा नहीं इसलिए अधिकांश स्त्रियां इस रोग का ग्रास बन जाती हैं। इन दिनों में और भी अधिक सावधानता की आवश्यकता है जिसका सम्बन्ध सन्तान के साथ है। जब भी गंर्भ ठहरता है, रजोदर्शन के प्रायः बाद ही ठहरता है। इसलिए निम्नलिखित बातों का बड़ा ध्यान रखना चाहिए। श्री धन्वन्तरी जी महाराज कहते हैं कि रजस्वला अवस्था में–

१. दिन में न सोए, नहीं तो यदि उस रजोदर्शन के पश्चात् गर्भ ठहर गया तो सन्तान बहुत सोनेवाली उत्पन्न होगी।

२. काजल और सुरमा आंखों में न लगावे, नहीं तो सन्तान अन्धी पैदा होगी।

३. रुदन न करे, नहीं तो विकृति दृष्टि वाली सन्तान

पैदा होगी।

४. स्नान और अनुलेपन न करे, नहीं तो दुःखशील सन्तान पैदा होगी।

५. तैलाभ्यमर्दन (मालिश) न करे, नहीं तो कुष्ठी सन्तान पैदा होगी।

६. नाखून न कुतरवाया करें, नहीं तो बुरे नाखून वाली सन्तान पैदा होगी।

७. दौड़कर न चला करें, नहीं तो चंचल स्वभाव वाली सन्तान पैदा होगी।

८. हंसी न करें, नहीं तो काले दांत वाली सन्तान होगी।

६. बहुत बोला न करें, नहीं तो बकवादी सन्तान होगी।

१.. तीक्ष्ण शब्द न सुनें, भुशुण्डी तोप इत्यादि की धमक न सुनें वरन बहरी सन्तान पैदा होगी।

११. कंघी न किया करें, भूमि न कुरेदा करें, नहीं तो गंजी सन्तान पैदा होगी।

१२. प्रचण्ड वायु न खाया करें, (कष्ट परिश्रम न किया करे) नहीं तो पागल संतानपैदा होगी।

१३. अश्लील गाना, कुशब्द सुनना, बुरी पुस्तक पढ़ना और हंसी मखोल न करे, नहीं तो निर्लज्ज संतान होगी।

१४. पुरुष संयोग न करे, नहीं तो अनके रोग युक्त आदि कन्या होगी वैश्या या गुप्त व्यभिचारिणी होगी, यदि पुत्र हुआ तो वैश्यागामी कुचलन होगा।

१५. शृंगार न करे, नहीं तो कामी, व्यभिचारी शृंगारिक

संतान पैदा होगी।

१६. झूठ न बोला करे, नहीं तो पाखण्डी सन्तान होगी।

१७. क्रोध न करे नहीं तो दुष्ट सन्तान पैदा होगी।

१८. मांस न खावे, नहीं तो पापी सन्तान पैदा होगी।

१६. उपवास न करे, नहीं तो पेट के रोग वाली सन्तान पैदा होगी।

महर्षि धन्वन्तरी जी का उपदेश है कि रजस्वला स्त्री चार दिन कोई श्रृंगार या कुचेष्टा न करे, क्योंकि जिस अंग का श्रृंगार करेगी उस अंग से रक्त के जाने से मलांश साथ ही अवश्य जावेगा और रोग का बीज उस अंग में बोया जायेगा, और जो सन्तान उस स्त्री की उत्पन्न होगी उसके वे अंग रोगी अथवा निर्बल होंगे। इसलिए ऐसा जानकर स्त्री परिश्रम काम–धन्धा अधिक भी न करे किन्तु यह समझे कि उसको ईश्वर ने विरेचनं (जुलाब) दे रखा है। तथा तद्वत् आचरण करे।

सन्तोष–माता जी! यह तो बड़ा कठिन कार्य है, इतनी सावधानी कौन कर सकता है? यह तो कैदी की तरह जीवन व्यतीत करना है और फिर एक मास नहीं, सदा प्रत्येक मास में यही कैदखाना लिख रहा। तभी कहते हैं कि स्त्री की योनि नरकमय है। कन्या बिचारी अनाथ सी पलती है।

दया.–भोली बेटी! बस इतना सुनकर डर गई और कैदखाना भी समझने लग गई। पवित्रता का जीवन तो वही होता है जो तप और त्याग का जीवन हो, संयम और नियम

का जीवन हो। क्या तू अनियमित जीवन को स्वर्ग और नाथों (वारसों) वाला जीवन समझती हैं? यह सब प्रतिष्ठा अपने आप पूरी हो जाती है। केवल यद्यपि रजस्वला स्त्री ४ दिन बिल्कुल एकान्त वास करे। हां एकान्तवास करना कठिन है। यह रोगियों, तपस्विों, महात्माओं, सन्तों का कार्य है। तू बता जिस स्त्री को प्रत्येक मास में ४ दिन महात्माओं का जीवन प्राप्त हो वह सौभाग्यवती या कैदी होगी।

जब तक स्त्रियां शास्त्र मर्यादा पर चलती रहीं कोई दुःख क्लेश न था, न आप शीघ्र मरती थीं न बच्चे सामने मरते थे। आयु बड़ी होती थी। अब तो शरीर का रोग और बुढ़ापे का भय, सन्तान के मरने और बड़ी हो जावे तो अयोग्य और कलंकित करने वाली का डर सदा लगा रहता है। आज डाक्टरों की हस्पतालें, वैद्य, हकीमों की दुकानें जितनी भी हों सब रुग्णों से भरी दिखाई देती हैं। जरा स्त्री के प्रसव के दिन आए सब मैके को चिन्ता हो चली कि बेटी सकुशल प्रसव हो! इसकी जान बच जाए। क्या यह कोई कम भय है? आगे तो कभी ऐसा भूल कर भी भय नहीं होता था। कष्ट तो अवश्य प्रसूता को होता है परन्तु वह एक आवश्यक और प्राकृतिक बात है। किन्तु यह मृत्यु का भूत तो किसी को डराता न था, जो मरने से पहिले मार देता है और भय से आयु कम होने लग जाती है। और इससे अधिक सावधानी गर्भ के समय करनी पड़ती है। वह भी ध्यान देकर सुन ले। गर्भाधान के लिए अष्टमी, चौदस, अमावस, पूर्णमासी

ये चार तिथियां वर्जित हैं।

सन्तोष : (बात काटकर) यह क्या माता जी! हम लोग नक्षत्र और ग्रहों को माननेवाले नहीं। इससे क्या अभिप्राय?

दया.—बेटी! उत्पत्ति तो शरीरों की होती है, आत्मा की तो नहीं होती, आत्मा कर्मानुसार शरीर को धारण करती हैं और शरीर बनता है प्रकृति का। प्रकृति में हम देखते हैं कि प्रत्येक कार्य नियमपूर्वक होता दिखाई देता है। कभी शरद् ऋतु में नदियां नहीं बढ़तीं, सर्वदा ग्रीष्म ऋतु में बढ़ती हैं वायु का वेग, चन्द्रमा का बढ़ना घटना, वनस्पति उत्पत्ति, पतझड़ होना, फूलों का खिलना, बुलबुल, कोयल का आलाप, भ्रमर, मच्छर, मक्खी सबके सब अपने—अपने समय पर प्रकट होते हैं। मनुष्य तो सबसे श्रेष्ठ है। साधारण पशु—पक्षियों में भी गर्भाधान नियत समय पर होता है और पूरी तैयारी करके। जितने भी पक्षी और तितलियां हैं जब आपस में समागम करते हैं तो अपने पैरों को बड़े जोर से हिलाते हैं जिससे उनके बच्चों में उड़ने की शक्ति ठीक हो। इसी तरह मांस भक्षी जानवर सन्तान पैदा करने से पूर्व आपस में खूब लड़ते हैं। श्रावण मास में कुत्तों की पंक्तियां ऐसी देखी जाती हैं। शेर और चीते आदि तो इस समय पर बहुत ही भयानक हो जाते हैं। हिरण और अन्य दौड़ने वाले जानवर इस समय से प्रथम कई दिन तक दौड़ते रहते हैं। घोड़ी घोड़े को उस समय तक निकट नहीं आने देती जब तक वह दौड़ न ले। ये सब क्यों ऐसा करते हैं? अपने जैसा बनाने के लिए।

इतनी भावना प्रबल करके परिश्रम करते हैं। इसलिए मनुष्य को आवश्यक है कि वह सन्तान पैदा करने में बहुत ही सावधानता और चतुराई से काम ले। इनकी असावधानता से यह संसार दुःख और कष्ट का घर बन गया है।

इन तिथियों का निषेध बिल्कुल ज्योतिषशास्त्र के अनुकूल है। अष्टमी के दिन चन्द्रमा और सूर्य के समकोण (कायमुजाविया) होने से सारे मालियात (जीवों और औषधियों) में एक अद्भुत परिवर्तन होता है। समुद्र का ज्वारभाटा इस दिन बहुत कम होता है। इसी दिन जो सन्तान पैदा करने का प्रयत्न किया जायेगा वह सन्तान बहुत ही निर्बल होगी। अमावस और पूर्णमासी के दिन सूर्य चन्द्रमा में भी अवस्था बराबरी की होती है। इसलिए नजाम शमशी और मण्डल में बड़ी हलचल रहती है और बड़े से बड़ा ज्वारभाटा होता है। इन दिनों के गर्भाधान से उत्पन्न की गई सन्तान भी अच्छी न होगी। लड़ाकू और व्यभिचारी होगी। कई तो कहते हैं कि अमावस के दिन गर्भाधान करने से सन्तान चोर पैदा होती है। यह तो बात है यथार्थ ज्योतिष की। वाग्भट और सुश्रुत में दो और दिनों का भी निषेध है। रजोदर्शन से ग्याहवीं रात में अगर गर्भाधान किया जावे तो नपुंसक सन्तान पैदा होती है। इसलिए वैद्यक के नियमानुसार रजोदर्शन की चार रात्रि, अष्टमी, चौदस, अमावस, पूर्णमासी चार रात्रि और ग्यारहवीं दो रात्रि कुल दस दिन रात्रि तो मना है शेष ठीक है किन्तु उनमें भी वे कहते हैं कि रजोदर्शन से लेकर १६ दिन तक

के भीतर–भीतर इन अनुपयुक्त तिथियों को छोड़कर जो शेष रहें गर्भाधान करना चाहिए। वीर्य और रज एक रस हैं जो जल से बनता है। जल वृष्टि का देवता है और तिथियां चन्द्रमा के हिसाब से गिनी जाती हैं।

२. गर्भाधान के समय माता–पिता का मन जैसा होगा, सन्तान का मन भी वैसा ही होगा। लक्ष्य से सन्तान पैदा करने वाले तो पहिले तैयारी करते और मन को वैसा बनाते हैं। जो विषयी पामर लोग हैं, उनकी सन्तान तो विषय विकार के अधीन पैदा हो जाती हैं। गलती से या नासमझी से, इसलिए जो सन्तान विषय की दासता में पैदा होती हैं, सन्तान दास ही होती हैं, स्वतन्त्र नहीं होतीं और जो अपने लक्ष्य से नेक भावना से जानकर पैदा की जाती हैं, वे सन्तान नेक और अपने मन के लक्ष्य के अनुसार पैदा होती है।

३. गर्भवती स्त्री जिस प्रकार की कथा और आशीर्वाद गर्भ की अवस्था में श्रवण और स्मरण करेगी, सन्तान के मानसिक विचार भी वैसे ही होंगे, वृत्तियां भी उसी प्रकार के कर्मों की ओर झुकी होंगी गर्भ के भीतर तो बच्चा (Blank Record) थाली है जो चाहे, उसमें अंकित कर दे।

४. गर्भस्थिति होने के बाद कभी भी स्त्री–पुरुष समागम न करें, अपितु सारी कुचेष्टा छोड़ दें। नहीं तो जिस तरह की कुचेष्टा आपस में करेंगे सन्तान भी बिना सीखे पैदा होने के बाद वैसी करती हुई दिखाई देगी। कुचेष्टा शब्द इसलिए

प्रवृत्त किया गया है कि गर्भ के पश्चात् कामजन्य वृत्ति का कोई भी कार्य करना कुचेष्टा कहलाती है जो कि गर्भ से पूर्व चेष्टा समझी जाती है। इस छोटे से वाक्य से तुम सब कुछ समझ सकती हो।

५. पावों के बल अधिक बैठना गर्भवती के लिए निषिद्ध है, नहीं तो गर्भपात होने का डर रहता है।

६. ऊंचा नीचा चढ़ना, उतरना, अति परिश्रम करना सब त्याज्य है।

७. मलमूत्र के वेग को रोकना बहुत भयानक है। बहुत सी स्त्रियां लज्जा के मारे सभा में बैठी हुई नहीं उठतीं, यह भूल है।

८. अत्युष्ण पदार्थों का प्रयोग हानिकारक है।

६. भूखे रहना।

१०. चोटं का लगना।

११. भारी बोझ का उठाना।

१२. भयानक दृश्य देखना।

१३. ऊंट आदि अधिक हिलाने वाली सवारी पर बैठना निषिद्ध है।

१४. तोप आदि के भयंकर शब्द सुनना।

१५. ऐसी औषधियां खाना जिनसे गर्भ गिर जाए सब निषिद्ध हैं।

१६. शोक, भय रोचक तथा विषैले पदार्थों के सेवन से पृथक् रहें। यह सब बातें सावधानी की हैं। बहुत बातों की

सावधानता तो परिवार वाले भी कराते हैं। दो बातों का ध्यान स्वयं स्त्री–पुरुष को आवश्यक है। एक तो आहार वैसा खाया जाये जैसी सन्तान पैदा करने की इच्छा हो। दूसरा गर्भ के समय किसी प्रकार की कुचेष्टा न होने पावे। प्रायः जो सन्तान के आचरण को बिगाड़ने वाली वस्तुएं हैं वे यही दो हैं, जिनका गृहस्थी ध्यान नहीं रखते।

सन्तोष–तो क्या सन्तान का पैदा करना भी मनुष्य के आधीन है जैसी चाहे कर सके?

दया.–परमात्मा की यही तो विशेष दया है। यह सब प्रकृति की रचना केवल जीव ही के लिए तो है और जीवों में मनुष्य देह में रहने वाले जीव का सब वनस्पति, पशु–पक्षी और जड़ जगत् पर अधिकार है इसलिए कि यह परमात्मा का प्रिय पुत्र है स्वामी का पुत्र स्वामी होता है यदि वह अपने आपको और अपनें पिता को समझे। इन्हीं तिथियों के भीतर जहां नपुंसक का प्रभाव बताया वहां लड़का और लड़की भी तिथियों पर आश्रित हैं। रजोदर्शन से गिनने में जो दिन सम (जुफ्त) हों उनमें गर्भाधान का समय १. बजे से २ बजे तक रात्रि का अच्छा समझते हैं जबकि पुरुष की दाहिनी नासिका (सूर्य नाड़ी) चलती हो। ब्राह्मण धर्मात्मा सन्तान पैदा करनी हो तो स्त्री–पुरुष को कुछ काल पूर्व ब्रह्मचर्य रूपेण रहते हुए वैसे विचार बनाने चाहिएं और क्षत्रिय वैश्य सन्तति पैदा करनी हो तो वैसे विचार उत्पन्न करने चाहिएं। जैसे किसान यदि ईख (कमाद) पैदा करना चाहे तो तीन फसलों तक भूमि

को खाली (ब्रह्मचर्य) में रखता है। उस भूमि को हल, पानी खाद से बार–बार तैयार करता और नम करता रहता है और ईख होने पर भी उसकी बड़ी रक्षा करता है। तब वह गन्ना पक कर मीठा और स्वादु होता है। यदि उद्यान लगाना हो तो उसके लिए कितनी बड़ी तैयारी की आवश्यकता होती है। किन्तु मटर और सांबक जैसे अन्न पैदा करने के लिए कोई विशेष परिश्रम ही नहीं करना पड़ता। ऐसे ही फेंक देते हैं तो भी पैदा हो जाते हैं। साधारण लोगों की संतान का मटर और सांबक की तरह ही हाल है। ये सब अन्न छोटे और अल्पमूल्य समझे जाते हैं। भावी संतान पर रहने के कमरे का चित्रों का और वेष के रंग का भी बड़ा प्रभाव होता है।

सन्तोष—इन तिथियों का ज्ञान कैसे हो? प्रतिदिन पत्री और जन्तरी खोलकर देखा करें? और फिर ऋतुं समय की गिनती का भी कोई हिसाब है या...।

दया.—बहुत अच्छी बात पूछी। प्रायः इसमें ही भूल हो जाती है। एक और बात भी मुझे स्मरण आ गई। पूर्व उसे सुन लो, सम्भवतः कहीं भूल न जाये वह यह कि गर्भवती स्त्रियां मिट्टी बहुत खाने को मांगती हैं और चोरी–चोरी खाती भी हैं। यदि सन्तान उत्तम पैदा करनी हो तो इन दोनों वस्तुओं का पथ्य (परहेज) अवश्य करना चाहिए। मिट्टी तो प्रसव के समय कष्ट देती है। यह मिट्टी बच्चे की झिल्ली (परदे) के साथ चिपट जाती है फिर बच्चा कठिनता से बाहर

निकलता है। मिट्टी खरास भी करती है, तो प्रसूता को घाव भी हो जाता है। प्राचीन काल में अचार का प्रयोग तो वैसा औषधि रूपेण आवश्यकतानुसार वैद्य कराते थे। अब तो स्वाद के लिए मनुष्य खाते हैं। रज वीर्य पतले और निर्बल हो जाते हैं। इससे प्रतिश्याय (जुकाम) नजला रहने से बच्चे के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अब रहा प्रश्न तिथि का, सो आम लोग नित्य प्रति हवन सन्ध्या करते समय एक संकल्प पढ़ा करते थे।

ओ३म् तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे..... इसमें प्रतिदिन की तिथि, मास संवत् नक्षत्र तथ मुहूर्त्त आ जाता है और प्रतिदिन प्रातः ही ध्यान आ जाता था कि आज अमुक तिथि है। इसमें गृहस्थी को अष्टमी, पूर्णमासी अमावस्या का सहज स्वभाव से ज्ञान रहता है, दूसरा ऋतुदर्शन जिस समय भी हो, सूर्य निकलने से ४५ मिनट पूर्व अर्थात् उषा काल सें वह दिन गिनना चाहिए। उदाहरणार्थ एक स्त्री को २६ फरवरी को दिन के किसी समय ऋतु या रात्रि के किसी समय आया अर्थात् ६ बजे प्रातः तक जब कि सूर्य निकलने में घन्टा भर के लगभग देर है, वह २६ फरवरी गिना जाएगा। सूर्य निकलने पर उसका दूसरा दिन गिना जाएगा। यदि ६ बजे के पीछे आया तो २७ फरवरी गिना जाएगा इससे ग्यारहवीं अथवा तेरहवीं रात्री या दिन गिनना चाहिए, जोकि वर्जित है और जो चन्द्रमा की तिथियां हैं, अष्टमी, अमावस्या आदि वे चन्द्रमा से गिननी चाहिए, इस अवस्था में पत्रिका का देखना

ही पर्याप्त हो जाता है। हां, तिथि की घड़ियों का हिसाब समझने के लिए चतुर आदमी तो ऐसे गिन लेते हैं। उनका घटाव, बढ़ाव नियमानुसार होता है और सदा एक जैसा प्रति मास में वही नियत कार्य करता है। जिसे ऐसी समझ न हो, वह देख भी लिया करें।

जिस प्रकार की सन्तान पैदा करनी हो, रजोदर्शन से चौथे दिन शुद्ध होने पर स्नान कर वस्त्र आभूषण पहिन, उसी आकार के पहले दर्शन करे तथा गर्भाधान के समय भी वही आकार सन्मुख रहे। पतिव्रता सबसे पहले अपने पतिदेव का दर्शन करती है, और गर्भाधान के समय तो सबसे निकट आकार अपने पति का ही होता है। परन्तु आज तो स्त्रियां विलायत के ककोरे आंखों वाले बच्चों के चित्र लटका रखती हैं, और सदा उनका ध्यान किया करती हैं कि ऐसा बच्चा पैदा हो। लोग समझें कि अंग्रेज का बच्चा है। सुन्दर बच्चे पैदा करने की इच्छा करनी चाहिए जो चरित्रवान् हो। बशर्ते कि अपना पति इतने ऊंचे आदर्श का देवता न हो।

सन्तो.—माता! आपने तो कहा कि सन्तान का पैदा करना मनुष्य के अपने अधीन है किन्तु मैंने सुश्रुत में पढ़ा था——कर्मणां चोदितं जन्तो भवितव्यं पुनर्भवेत्।

यथा यथा दैवयोगाद् दौर्हृदं जनयेदं ध्रुवम्।।

सूत्र स्थान अध्याय ३ सूक्त ३२

अर्थात्—कर्म की जिस प्रकार प्रेरणा होती है उनके अनुकूल ही होनहार होता है और दैवयोग से उसी के

अनुसार ही गर्भवती स्त्री के मन में इच्छाएं पैदा होती हैं।

दया.—बेटी! यह बिल्कुल ठीक है, शास्त्रों की वाणी कब मिथ्या हो सकती है। यह तो तब के लिए श्लोक है जब बच्चा गर्भ में आ गया। जैसा वह बच्चा है, जैसे उसके कर्म हैं, वैसी ही अपनी सेवा—शुश्रुषा करवानी है। किन्तु मैं तो तुम्हें यह समझा रही हूं कि जिस प्रकार की उत्पत्ति और फल की इच्छा हो पहले वैसी भूमि बनाओ। न तो किसान अनबनी भूमियों में ईख की खेती करेगा, न बनी हुई भूमि में मटर बोएगा जब मटर अनबनी भूमि में बो दे, तो मटर के अनुकूल ही उसे पानी देगा और रक्षा करेगा। ईख वाटिका अपने अनुकूल स्वयं माली को विवश करती है कि वैसी उसकी सेवा शुश्रूषा करे। जैसे किसी आदमी ने घुड़साल बनाई हो तो क्या वहां वह किसी महात्मा को ठहराने का भी ध्यान करेगा? कदापि नहीं और भोजनालय में कभी गाय, घोड़े नहीं बांधेगा। अनेक जीव आकाश में हैं जिन्होंने जन्म लेना है और अनेकों के साथ हम लोगों का सम्बन्ध है। आते सब जीव प्रभु आज्ञा से हैं परन्तु वह आज्ञा जीवों के कर्मानुसार ही होती है परन्तु वह आज्ञा जीवों के कर्मानुसार ही होती है, और वे जीव जिस माता—पिता रूपी भूमि के योग्य होते हैं उनमें प्रवेश करते हैं इसलिए यदि पहले से ही भावना बांधी हो, और वैसी तैयारी और आचरण हो तो वैसा ही जीव आवेगा, दूसरा नहीं और फिर वह बच्चा अपने संस्कारों के बल से अपनी सेवा शुश्रुषा वैसी करायेगा। एक

दूसरी बात भी है, कभी—कभी जीव निर्मल संस्कारों के भी आते हैं तो गर्भ के समय ऐसा विचार स्त्री पुरुषों का परिपक्व हो जावे कि इस तरह की संतान उत्पन्न न हो तो अपने सोने के कमरे में उस प्रकार का उत्तम चित्र लटका छोड़ना चाहिए और पुरुष स्त्री दोनों इस चित्र की प्रशंसा करते हुए स्त्री के चित्त पर वह चित्र बिठा देना चाहिए, जिससे बालक भी वैसा ही उत्पन्न हो। प्रतिदिन ऐसा अनुष्ठान करना चाहिए।

सन्तोष.—यह जो लिखा है कि गर्भवती स्त्री को जिस वस्तु की इच्छा हो उसे तुरन्त देनी चाहिए, नहीं तो हानि होती है। फिर आप कहती हैं कि इनके खान पान का ध्यान रखना चाहिए और हानि कैसी और क्या हो जाती है?

दया.—अज्ञान के कारण ही सब दुर्वासनाएं पैदा होती हैं। क्या तुम्हारी इच्छा होती है कि मैं मांस खाऊं या मदिरा पीऊं।

सन्तोष.—हरे! हरे!

दया.—वैद्यक वालां ने नियम तो साधारण लिखा भलाई के लिए। यदि गर्भवती स्त्री की इच्छा भी अच्छी वस्तु की हो और उसे घर वाले असावधानी या कृपणता के कारण न दें उन्हें कोई दण्ड भी तो मिलना चाहिए। गर्भवती स्त्री की इच्छाएं ही बच्चे के भविष्य को बतलाने वाली होती हैं। मैं तुम्हें हानि तो पीछे बताऊंगी, पूर्व तुम्हें एक ऐतिहासिक रोचक घटना सुना दूं।

झंग मधियाना के जिले में चिन्योट एक तहसील है। उसके पास तीन मील पर किसी ग्राम में एक यवन स्त्री गर्भवती थी। वह अपने जट्ट (पति) से कहने लगी कि मुझे काबुली–सेव ला दो। गरीब जट्ट कहने लगा, मेरे तो बाप ने देखा भी न होगा, और तू कहती है ला दे। यहां ग्राम में सेव तो क्या, गाजरें भी नहीं मिलतीं। बहुत बार वह कहती रही, किन्तु जट्ट बेचारा कहां से लाता। न शक्ति, न प्राप्ति। बड़े क्रोध में आकर उसे बुरा भला कहा या पीटा भी होगा। दिन बीत गये। गर्भवती की इच्छा वैसी की वैसी बनी रही पर डर के मारे कह भी न् सके कि मार पड़ेगी, और कभी–कभी जब जट्ट प्रसन्न हो तो हंसी–हंसी में कह दे। किसी कार्यवश एक पठान शहर चिन्योट गया और शहर के बाहर एक पठान काबुल देश का बहुत से मेवे, अंगूर, सेव, नेजे, अखरोट आदि बेच रहा था। यह जट्ट भी बड़े ध्यान से देखने लग गया।

पठान–अरे जट्टा क्या देखता है?

जट्ट–(सेव को उठा कर) यह क्या है?

पठान–यह सेव है।

जट्ट–कितने मूल्य का है?

पठान–इतने........ का जट्ट ने रख दिया, और ठण्डा सांस लेकर उठ खड़ा हुआ। पठान ने उसकी ठण्डी सांस का अनुभव किया और कहा–"क्यों? जट्ट क्यों नहीं लेता।"

जट्ट–आवश्यकता तो बड़ी थी किन्तु पैसे नहीं हैं।

पठान—क्या आवश्यकता है? कोई रुग्ण है।

जट्ट—नहीं, मेरी स्त्री गर्भवती है, वह बार—बार मांगती है। मैंने तो उसे कहा है मेरे तो बाप ने देखा नहीं सेव क्या होता है पर वह बार—बार मांगती है। (पठान बड़ा चतुर अनुभवी था, उसने समझा, जट्ट और जट्टी गंवार क्या जानें सेव क्या होता है उसके पेट में रहने वाला बच्चा मंगवा रहा है। वह कोई चीज बनेगा)।

पठान—लो ले जाओ। एक, दो, तीन जितने चाहो ले जाओ, इसका मूल्य तुम न दो, तुम्हारा बेटा देवे। यदि वह मन्त्री बन जावे, ईश्वर ऐसा करे तो है स्वीकार?

जट्ट—बाबा! हंसी उड़ाता है? मैं निर्धन, गंवार रोटी खाने को पूरी मिलती नहीं, दिन भर कमाता हूं। अब मेरा पुत्र मन्त्री कैसे बन जाएगा।

पठान—तुमसे तो प्रतिज्ञा कराता हूं कोंई मूल्य तो नहीं मांग रहा। लो यह कागज है। इस पर अंगूठा लगा दो। मैं यह लिखता हूं।

कि जब यह पठान यह कागज मेरे पुत्र को राजसभा में मंत्री की मुर्सी पर बैठा हुआ देखकर दिखावे, तो यह पठान जो मांगे या सवाल करे उसको पूरा करे। यही सेब का मूल्य निश्चित किया गया है। जट्ट ने अंगूठा लगा दिया और कुछ सेव लेकर चलता बना, जाकर अपनी स्त्री को दिए खिलाए। जट्टी बड़ी प्रसन्न हुई और समाचार पूछा, तब जट्ट ने सब समाचार कह सुनाया।

ईश्वर की कृपा से कुछ दिनों में लड़का पैदा हुआ, कुछ बड़ा हुआ, छः वर्ष का हुआ तो, मस्जिद में मुल्ला के पास पढ़ने लगा और गांव के लड़कों के साथ कुछ वर्ष पढ़कर देहली की मस्जिद में जाकर पढ़ने लगा।

होनहार विरवान के होत चीकने पात

शाहजहां का समय था। ईरान के महाराजा ने लिखा कि तुम हिन्दुस्तान के बादशाह हो। तुम अपने को शाहे हिन्द की बजाय शाहजहां क्यों प्रसिद्ध करते हो? उत्तर दो, नहीं तो मेरे साथ युद्ध करो। राजा के पास जब यह पत्र दूत लेकर आया, तब मन्त्रियों से उसने प्रश्न किया कि उत्तर दो। कोई उत्तर न दे सका। तब सारे राज्य में नगर–नगर, गांव–गांव में ढिंढोरा पिटवाया कि जो कोई बच्चा, बूढ़ा, जवान इस प्रश्न का उत्तर देगा, उसे इतना पारितोषिक दिया जावेगा। सब जगह ढिंढोरा पिटवाया गया। इस गांव (मस्जिद) में भी ढिंढोरा पीटा। उस लड़के ने भी सुना। भला यह सोच कैसे किसे आती है? परमात्मा जिसका भविष्य बनाने वाले होते हैं उसे ही प्रेरणा करते हैं, और सुलझाते हैं। एक दिन उस लड़के के दिमाग में एक खेल समाई। वह प्रथम पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ पर जहां की अक्षरों के नीचे गिनती लिखी हुई थी वह पहले अपने नाम का अक्षर जमा करने लगा फिर दूसरे के। धीरे–धीरे उसने शाहजहां के नाम के अक्षरों की गिनती और शाहे हिन्द के अक्षरों की गिनती पृथक्–पृथक् जमा की तो एक बराबर निकले। तब लड़का आनन्द से

फूला न समाया और मुल्ला से कहा—मैंने इस प्रश्न को निकाल लिया मुल्ला यह हिसाब देखकर चकित हो गया और उसने झट बादशाह को लिखा या स्वयं गया। राजा ने पूछा—किसने निकाला है? उसने कहा—मेरे एक शिष्य ने निकाला है। शाहजहां राजा ने उसका उत्तर शाह ईरान को लिख भेजा कि मैं अपना नाम शाहजहां प्रसिद्ध नहीं कर रहा। शाहे हिन्द और शाहजहां के अक्षरों की गिनती एक बराबर है। जो शाहे—हिन्द है वही शाहजहां है। जब ईरान के राजा ने उत्तर पढ़ा और हिसाब देखा तो चकित हो गया कि जिस राजा के पास ऐसे चुतर मन्त्री हों, वह क्यों न शाहजहां कहलाये! फिर लिखा कृपया जिस मन्त्री ने इस प्रश्न का उत्तर दिया है, और हमें रक्त बहाने से बचाया है, उसे भेजो। मैं उसे प्रधानमन्त्री बनाना चाहता हूं। मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूंगा, तथा मेरी मित्रतां का सम्बन्ध सदा आपके साथ रहेगा। तब शाहजहां ने उस लड़के को बुलाया, उसकी प्रशंसा की, सिर पर हाथ फेरा। मन्त्रियों ने कहा कि 'ऐसे होनहार लड़के को कभी न देना चाहिये। इसकी छात्रवृत्ति (वजीफा) निश्चित कर दी जाए। राजा ने शाहे ईरान को लिखा कि इस प्रश्न को एक लड़के ने निकाला है। उसके माता—पिता आज्ञा नहीं देते। अभी वह बच्चा है, और पढ़ रहा है। राजा ने वजीफे के साथ लिख दिया कि बड़ा होने पर इस लड़के को राज्य का प्रधानमंत्री बनाया जाये। जब वह लड़का ईश कृपा से बड़ा हुआ पढ़कर राज्य का प्रधानमंत्री बना और वही पठान

फिर उसके मन्त्रित्व के समय आया (वह आया–जाया करता था) और जब वह एक दिन राज्य–सभा में बैठा था तब वह पठान पुराना–सा कागज जीर्ण–शीर्ण हो गया था सिर झुका कर मन्त्री के सामने रख दिया। मन्त्री ने पढ़ा और अपने पूज्य पिता का नाम और अंगूठा देखकर (इस कथा को अपने माता–पिता से सुन चुका था बाल्यावस्था में) पठान को प्रणाम किया और कागज सिर पर रक्खा, तथा मुख से चुम्बन किया आंखों से लगाया और आशीर्वाद मांगकर कहा–पठान साहिब! आज्ञा करो क्या मांगते हो?"

पठान–इस कागज को पूजोगे?

मन्त्री–सिर आँखों पर।

पठान–मेरे देश का कोई आदमी यहां मेवा बेचने के लिए आए तो उससे किसी भी नगर में किसी प्रकार का 'कर' न लिया जाए। ऐसी आज्ञा जारी कर दी जावे। मन्त्री ने सहर्ष स्वीकार किया तथा तदनुसार आज्ञा जारी कर दी।

गर्भवती स्त्री की इच्छित वस्तु उसको न मिलने से कुबड़ा, लंगड़ा, मूर्ख, अन्धा बालक स्त्री से उत्पन्न होता है। ऐसा वैद्यक वाले कहते हैं। होशियारपुर जिले की घटना है। एक बार एक उपदेशक अपने व्याख्यान "संस्कारों के प्रभाव" के विषय में बोल रहे थे तो एक घटना बताई।

बंसीकलां (जिला होशियारपुर) में एक देवी गर्भवती थी। सीमन्तोन्नयन संस्कार में वहां बड़े बनाने की रीति प्रचलित है। उसकी सास ने बड़े तल रखे थे। गर्भवती ने देखा उसके

मन में उत्कण्ठा हुई कि खाऊं। सास को कहा। उसने डांट—डपट की कि पहले ब्राह्मण आवेगा। रीति पूरी होगी फिर बांटेंगे तब खाने को दूंगी। उसने बड़ी नम्रता से प्रार्थना की, कई बार मांगा कि मेरा मन गिरता जा रहा है, एक ही बड़ा दे दो। परन्तु उसने नहीं दिए! जब बच्चा पैदा हुआ तो ज्यों—ज्यों बड़ा होता, सूखता जाता था। अनेक चिकित्साएं की गईं लाभ न हुआ। वहां के एक प्रसिद्ध वैद्य पंडित गंगाबिशन (पूज्य स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के चाचा) थे। उनके पास एक दिन माता बच्चे को ले गई। समाचार सुनाया उन्होंने देखते ही कह दिया, अभी जाकर 'बड़े' बनाओ और बच्चे को तथा बच्चे की माता को खूब भरपेट खिलाओ। यहां तक कि इतना पेट भर जाए कि फिर न जी चाहे। बच्चे का गर्भ के समय का रोग है। उसी समय उन्होंने जाकर 'बड़े' बनाए, खूब खिलाए। बच्चा स्वस्थ हो गया। जों कमी गर्भवती की 'बड़े' के न मिलने से थी। वह अब 'बड़े' मिलने से बच्चे के शरीर को पूरा कर सकी।

जैसे गर्भ के समय रक्षा और ऋतु सावधानी के विषय में तुम्हें बताया है और ऐसे भी कई प्रकार की सावधानी तुम्हें करनी चाहिए। इस असावधानता के कारण बच्चे रोगी पैदा होते हैं या रोगग्रस्त हो जाते हैं।

१. गर्भवती सीधी उत्तान न सोया करे, नहीं तो गर्भपात हो जाता है।

२. गर्भवती नग्न न सोये, व्यर्थ इधर—उधर न फिरा करे,

नहीं तो सन्तान पागल पैदा होती है।

३. जो गर्भवती अधिक कलह और उपद्रव करने वाली हो तो मिर्गी रोग वाली सन्तान पैदा होती है।

४. गर्भिणी मैथुन करने वाली से निर्लज्ज तथा कामी सन्तान पैदा होती है।

५. गर्भवती बराबर शोकातुर रहे तो डरपोक अल्पायु सन्तान पैदा होती है।

६. गर्भ के समय स्त्री परधन लेने की इच्छा किया करेगी तो ईर्ष्यायुक्त तथा कामी, और आलसी, अतिद्रोही, कुकर्मी सन्तान पैदा करेगी।

७. यदि गर्भवती क्रोध किया करेगी, तो संतान क्रोधी छली तथा पिशुन (चुगलखोर) होगी।

८. अति सोने वाली की सन्तान निद्रालु, आलसी, मूर्ख मन्दाग्नि वाली होगी।

६. यदि मद्य पिया करेगी, तो तृषार्त्त तथा विकलचित सन्तान पैदा होगी।

१.. यदि गौ–मांस खावे तो शर्करा, पथरी आदि रोगों वाली सन्तान पैदा होगी।

११. यदि सुअर का मांस खावे, तो लाल नेत्रों वाली, हत्यारी, कठोर सन्तान पैदा होगी।

१२. यदि मछली खावे तो बहुत देर तक पलक झपकने वाली तथा टेढ़े नेत्रों वाली सन्तान पैदा होगी।

१३. यदि अति मीठा खावे, तो प्रमेही, गूंगी और अधिक

स्थूल सतान पैदा होगी।

१४. अधिक भोजन करने वाली से रक्तपित्त रोग वाली त्वचा के रोग वाली, नेत्र रोग वाली सन्तान पैदा होगी।

१५. अधिक नमक खाने वाली से अकाल में सफेद बाल होने वाली, सिलवत वाली तथा गंजी सन्तान पैदा होगी।

१६. चरपरे रस के अति सेवन से दुर्बल, अल्पवीर्य, बांझ नपुंशक सन्तान पैदा होगी।

१७. अति कड़वा खाने वाली से सूखे हुए शरीर, सूजन रोग निर्बल अथवा कृश सन्तति पैदा होगी।

१८. कृषाय रस का अति सेवन करने वाली से कृष्ण वर्ण की तथा अफारा और उदावर्त रोग वाली सन्तान पैदा होगी।

बस बेटी! मैं तो समझाते—समझाते थक गई। अपना अनुभव, दूसरों से सुना तथा ग्रन्थों में पढ़ा हुआ जो था तुम्हें अपनी सामर्थ्यानुसार बता दिया अब तुंम्हारी इच्छा या तुम्हारा भाग्य।

सन्तोष.—माता जी! शास्त्रों ने तो कोई बात बताने के लिए शेष नहीं रखी। संसार की अवस्था को देखकर तो यही ज्ञात होता है कि यह सब माता—पिता का ही दोष है। पर इसकी जिम्मेदारी या समग्र भार स्त्री पर है। यदि स्त्री इन मर्यादाओं का पालने करने वाली हो, तो जीवन पर्यन्त निष्पाप बनी रहे तथा एक ही जन्म में अपना बेड़ा पार कर जाए। सारा जीवन ही स्त्री का तपोमय है। तप की साक्षात् देवी ही नजर आती है।

दया.–इसीलिए तो इसका नाम देवी जन्म से है। संसार में जितने देवता जड़ तुम्हें दीखेंगे उनका व्यवहार स्वाभाविक तपोमय और नियमित है तथा जो मनुष्य देवता कहलाते हैं, वे भी इन देवियों के समान आचरण बनाते हैं तब देव कहलाने के योग्य होते हैं। स्त्री को 'त्रेमत' कहते हैं अर्थात् तीन प्रकार की मती नीयत वाली, बुद्धि ज्ञान रखने वाली।

१. शारीरिक ज्ञान–शरीर के हृष्ट–पुष्ट और आरोग्यता के लिए, रसोई का ज्ञान (विधि ऋतु अनुकूल अन्न, फल, सब्जी बनाने का ज्ञान, वेष, शय्या, आहार, मकान की सफाई जब कष्ट आने पर (पति रूग्ण हो जावे या कमाने के अयोग्य, अंगहीन हो जावे या मर जावे या किसी व्यापार के, भूमि के या पशु धन के घाटे से धन की व्यवस्था कमजोर हो जावे) उसका साधन कमाई जानना अर्थात् कला कौशल की कोई विद्याा रखने वाली हो।

२. सन्तान के चरित्र बनाने के लिए मनोविज्ञान इन्द्रिसंयम परिवार के साथ पारस्परिक सम्बन्ध ढंग जाननेवाली हो, आतिथ्य सत्कार की मर्यादा जानने वाली हो।

३३. परमात्मा की प्राप्ति के लिए संसार की सेवा का ज्ञान तथा परमात्मा की पूजा जानने वाली हो।

स्त्री के अनेक नाम हैं। इसे नारी भी कहते हैं। जो नरक से बचाने वाली हो, उसे नारी कहते हैं। इसको देवी कहते हैं, जो सदा निष्कामता से अपने प्रेम भाव कोमलता का दान करने वाली है। तथा पंजाबी में इसका लाम 'लज्ज'

भी है लज्ज नाम रस्से का है। (क) पुरुष जब विवाहित हो जाता है, तो सचमुच वह इस स्त्री (लज्ज) से बन्ध जाता है। (ख) पुरुष चित्त का रूप, प्रेम से पशुवत् बन्ध जाता है। स्त्री पुरुष का धर्म है। इसके बिना पुरुष का विश्वास कोई नहीं करता। (ग) स्त्री से ही सब कुटुम्ब की मर्यादाएं बंधी रहती हैं। (घ) पुरुष का परिवार स्त्री से बढ़ता है, फैलता है तथा उनके लिए पालन—पोषण करने के लिए बंध जाता है।

स्त्री को 'सवाणी' पंजाबी में कहते हैं। घर की स्वामिनी। घर में स्त्री है तो द्वार खुला है, स्त्री घर नहीं तो ताला लगा है। स्त्री को माता के नाम से पुकारा जाता है और माता सबसे प्रथम तथा बड़ा गुरु है। स्वयं परमात्मा ने अपनी माया से इसका स्थान पूजा का बनाया है। पशु और मनुष्य के बच्चे की उत्पत्ति और गर्भ की अवस्था में आकाश पाताल का अन्तर है। पशु का बच्चा जब जन्मता है तो पांवों के बल बाहर होता है तथा मनुष्य का बच्चा जब बाहर आने को होता है तो माता की टांगें फैली होती हैं और पांव सामने होते हैं। बच्चा सिर के बल पैदा होता है और बच्चे का सिर सबसे प्रथम नमस्कार अपनी माता को करता दिखाई देता है तथा नवमास पर्यन्त बच्चे का सिर उल्टा गर्भ में लटका हुआ मानो माता के चरणों में नमस्कार कर रहा है। इसलिए श्रुति कहती है—मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।

सबसे मुख्य गुरु और मान के योग्य माता है। इसी माता ही ने तो हरिश्चन्द्र से सत्यवादी, भगवान राम, कृष्ण

और दयानन्द, गुरु नानक देव, महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य जैसे तथा आजकल के युग के महापुरुष महात्मा गांधी, कर्ण जैसे दानी, युधिष्ठिर जैसे धर्मपुत्र, भीम व अर्जुन जैसे योद्धा जन्म दिए। अनेक ऐसे ऋषि, वीर, दानी, विद्वान इन्हीं की कोख से पैदा हुए।

बेटी! उस माता की कोख सफल हो गई, जिस माता की सन्तान ने अपना नाम संसार में अमर कर दिया। नहीं तो आज एक अरब सत्तानवे करोड़ उन्तीस लाख और कई हजार वर्ष बीत गए। करोड़ों मनुष्य पैदा हुए तथा कीड़े–मकोड़ों की तरह पेट भर–भर कर चले गए। आज उनका नाम भी कोई नहीं लेता। जो अमर हो गए, उनके जन्म तथा मृत्यु की तिथि भी मनाई और पूजी जाती है। कहते हैं :—

जननी जने तो भक्त जन या दाता या सूर।
नहीं तो इससे बांझ भली क्यों गंवावे नूर।।

पांचवां सोपान

ज्ञानप्रकाश–इस शरीर में सात धातु हैं। धातु जानते हो किसे कहते हैं?

सत्यव्रत–आशय तो समझता हूं, पूरा पूरा अर्थ नहीं आता।

ज्ञानप्रकाश–धातु Root को कहते हैं। फारसी में इसे 'मस्तदर' कहते हैं। मस्दर या धातु वही है कि जिस से सब कुछ बने। शरीर जिन वस्तुओं से बनता है या जिन वस्तुओं से शरीर को धारण किया हुआ है वह धातु है। वीर्य सातवां

धातु है और सबसे अन्त में बनता है। वैद्य लोग कहते हैं—कि यदि एक मन खुराक खाई जावे तो उसका चालीसवां भाग अर्थात् एक सेर खून बनता है, और उसका चालीसवां भाग (दो तोला) वीर्य जाकर बनता है, उदाहरणार्थ तुम आध सेर खुराक रोज खाओ और ईश कृपा से वह हजम हो जावे तो आधा सेर अर्थात् चालीस तोले में से एक तोला रक्त बनेगा और एक तोला (६६ रत्ती) का १/४. भाग (ढाई रत्ती) वीर्य बनेगा और यही ढाई रत्ती आंख, कान, जिव्हा, नासिका, मस्तिष्क और शरीर के सम्पूर्ण अंगों में प्राकृतिक नियमानुसार ज्योति जगा रही है और जब मनुष्य समागम करता है तो एक बार में डेढ़ तोला अर्थात् एक सौ चौतालीस रत्ती वीर्य का पतन हो जाता है। सारांश लगभग दो मास के खाए हुए आहार का संग्रह नष्ट हो जाता है। एक और प्रकार से अनुमान लगाया गया है कि साठ बिन्दु दूध से एक बिन्दु घृत बनता है और आठ बिन्दु धृत से एक बिन्दु वीर्य बनता है और साठ बिन्दु वीर्य से एक बिन्दु ओज बनता है : जिस ओज के न होने से मनुष्य निर्बल और निस्तेज दिखाई देता है जैसे दीपक बहुत सुन्दर और मांजा हुआ हो और बत्ती भी अच्छी और लम्बी हो, परन्तु उसमें यदि तेल न हो अथवा कम हो तो क्या वह जल सकेगा? ऐसे ही वीर्य शरीर में है। वीर्य से ही वीरता आती है। 'आत्मानां वीर्य बलम्' शास्त्रकारों ने जो मनुष्य के जीवन का भाग किया है, उसमें अधिक भाग ब्रह्मचर्य का है। सौ वर्ष की आयु में २५ वर्ष ब्रह्मचर्य, २५ वर्ष

वानप्रस्थ, २५ वर्ष संन्यास अर्थात् ३/४ भाग तो बिल्कुल ही ब्रह्मचर्य का शेष १/४ भाग अर्थात् २५ वर्ष में ही, गृहस्थ को तपोमय जीवन व्यतीत करने का आदेश है। केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए जिसे गर्भाधान का पवित्र नाम दिया गया है तथा समय भी जिसका नियत किया गया है, पुरुष स्त्री को वीर्य दान देवे। चांदी, सोने, वस्त्र, भूमि आदि के अधिकारी तो बहुत मिल जाते हैं पर वीर्य दान तो अपनी स्त्री के अतिरिक्त अन्य किसी को देने की आज्ञा नहीं और यह दान सब दानों में गुप्त दान होता है तथा जिस प्रकार इस दान की स्त्री रक्षा करती है ओर नौ मास पर्यन्त जिस तप और त्याग से बिताती है कोई दूसरा दान लेने वाला अधिकारी इतनी सावधानी करता नहीं होगा।

पशु की मृत्यु तो शरीर से होती है तथा उसका मूल्य भी शरीर से होता है परन्तु मनुष्य की मृत्यु सदाचार से होती हैं और उसका मूल्य भी सदाचार पर पड़ता है। सदाचार से मनुष्य जब गिरता है तो उसका अपयश होता है और वह मुख दिखाने योग्य नहीं होता, यही उसकी मृत्यु है।

सत्य.—बचपन में किस प्रकार ब्रह्मचर्य का नाश होता है, आपने कहा कि उसका कारण माता—पिता हैं

ज्ञान.—माता के गर्भ में जब बच्चा आता है तो कामवश या अज्ञानवश पुरुष संयम नहीं कर पाता, तब भी वह गृहस्थ करता रहता है 'जब कि उसे नहीं करना चाहिए, इस भूल का बच्चे के ऊपर कुप्रभाव पड़ता है। मोटी बात यह समझ

लो कि माता के गर्भ में रहने वाला बच्चा एक फोकस है कैमरे का। स्त्री और पुरुष जो भी क्रिया आपस में दर्शन, श्रवण या स्पर्श से करते हैं, उन सबका प्रभाव इस पर अंकित हो जाता है जो भूल माता—पिता कामवश करते हैं। सब स्त्री—पुरुष एक ही प्रकार की या सब त्रुटियां नहीं करते, किसी से कोई, किसी से कोई, किसी से सब की सब होती हैं। मैं सब त्रुटियों का वर्णन तुमसे करता हूं तुम ध्यान से सुनो!

१. स्त्री और पुरुष का प्रकाश में मैथुन करना, उनके तेज का नाश करना है चाहे लैम्प का प्रकाश हो, या सूर्य का।

२. दोनों का नंगे होकर सोना, एक दूसरे को नंगा देखकर प्रसन्न होना, बच्चा स्त्रियों को नंगा देखने का इच्छुक रहता है। एक लड़का जो सभ्यं मनुष्य का पुत्र था, उसमें यह आदत सुनी गई कि जब वह कुछ बड़ा हुआ तो लड़कियों के साथ खेलते हुए आप भी नंगा हो जाता है और लड़कियों को भी नंगा होने को कहता है। जबकि उस लड़के को भी सांसारिक ज्ञान न था केवल अभी बच्चों के साथ खेलने योग्य हुआ था। इस बात का ज्ञान तब होने लगा जब वह बहुत बड़ा हो गया तो प्रातःकाल उठकर जो बड़ी मान्य स्त्रियां सोई होतीं उनके घाघरे को उठाता।

३. किसी पुरुष में वह बुरा स्वभाव पड़ जाता है कि वह अपनी स्त्री से अपनी जनन इन्द्रियों को हाथ लगवाता और

क्रीड़ा करवाता है। स्त्री–पुरुष आपस में भेदभाव नहीं रखते। वे एक दूसरे के प्रेम में बिके होते हैं, और वे कोई दोष नहीं समझते अपितु प्रसन्न होते हैं। इसका परिणाम जब बच्चा जन्म लेता है तो बैठना सीखने पर बार–बार अपनी इन्द्रियों को पकड़े रखता है। फिर माता–पिता जब देखते हैं तो उसको निषेध करते हैं और समझाते तथा चोले का पलड़ा नीचे डलवाते हैं, पर वे बिचारे अपने किस किए दोष या बोए बीज को नहीं जानते हैं और क्रीड़ा करवाने वाले बच्चों में हस्तमैथुन का दोष आ जाता है और इससे भी भारी दोष देखा गया है कि जब लड़के और लड़कियां घरों की छतों पर खेलते हैं तो बेचारे मां बाप की समझ में तो बच्चे छोटे हैं। आपस में खेलते हैं। कोई अपवित्र भाव नहीं आता, परन्तु लड़के लड़कियों के हाथों से अपनी इन्द्रियों को स्पर्श कराते हैं। उन दोनों बच्चों को यह एक खेंल के अतिरिक्त और कोई समझ नहीं होती, पर उस बच्चे की–जिसमें विशेष समझ नहीं, इन्द्रिय में अवश्य उत्तेजना आती है, किन्तु वह निर्बल और बेसमझ होने के कारण दोष नहीं कर सकता पर बड़ा होने पर यदि संगत बुरी मिल जावे तो वह दुराचारी बन जाता है।

४. स्त्री, पुरुष नंगे होकर नाचते हैं और उसी नाच में एक दूसरे को क्रीड़ा में बिठाकर चुम्बन और समागम करते हैं। ऐसों का बच्चा उत्पन्न होकर बड़ा होने पर प्रायः वैश्या (नाचने वाली) के हाथ का शिकार हो जाता है।

५. गर्भवती स्त्री जब बोझल हो जाने के कारण पुरुष की कामातुरता में कष्ट समझती है और निर्दयी पुरुष अपनी आतुरता के कारण स्त्री की विष्ठा इन्द्रिय 'गुदा' में भोग करता है या वैसे यही दुराचारी पुरुष स्त्री की दोनों ही इन्द्रियों में समागम करने का व्यसनी होता है। तब ऐसों की सन्तान सम्भोग करने की आदी बन जाती है।

६. कभी कोई निर्लज्ज पुरुष स्त्री को खड़ा करके पशु के समान पीछे से समागम करता है। ऐसों की निर्लज्ज सन्तान पशुओं के साथ अनुचित सम्भोग करती हुई पकड़ी गई। गधी से कई दुष्ट पकड़े गए और एक दुष्ट गाय की बछड़ी से पकड़ा गया। जब मुकद्‌दमा चला तो उसकी बड़ी निन्दा हुई। एक विद्यार्थी जो आयु और बल में बड़ा था, एक बार कुतिया के साथ सम्भोग करने का प्रयत्न कर रहा था कि उसकां एक साथी जा पहुंचा और वह लज्जित हो गया।

७. अधिकतम स्त्री–पुरुष दिन और रात्रि में जब अकेले इकट्‌ठे होते हैं तो एक दूसरे को आलिंगन करते हैं। चूमते हैं जिन्हें कि वे आपस में प्रेम का चिन्ह समझते हैं। उनकी सन्तान भी जब वे बच्चे लुक छिप कर खेलते हैं या नाला,नदी में इकट्‌ठे स्नान करने जाते है। और खेल खेलते हैं तो वे उसी प्रकार एक दूसरे को आलिंगन करते हैं और कहीं कहीं लड़कियों से जब घनी मित्रता हो जाती है तो अकेले बैठे हुए एक दूसरे को भी वे चूम लेते हैं और बड़े आदमी होकर वे अपने से छोटे सुन्दर मित्रों को जब वे गले लगाकर मिलते

हैं तो अपने नाम से उनके गालों को चूमते हैं इससे वे अपना अर्थात् चुम्बन का काम पूरा करते हैं। उनमें कोई अपवित्रता का भाव नहीं होता किन्तु अपने प्रेम का परिचय तथा अपने माता–पिता के कुसंस्कार इसी प्रकार पूरा करते दिखाई देते हैं और कई बहुत बड़े प्रसिद्ध आदमी बन जाते हैं, तो जब कोई सुन्दर बच्चा या नौजवान मिलने आता है या वे उनसे मिलते हैं तो उनके कपोलों पर हाथ फेर कर प्रेम कर प्रकट करते हैं। (यह सब काम का एक अंग है)।

८. जो स्त्री पुरुष सदा अपने बनाव श्रृंगार में रहकर केवल एक दूसरे को सुन्दरता में ही देखने में प्रसन्न होते हैं, नव–विवाहित अपनी स्त्री के बनाव श्रृंगार को देखने के लिए कई बार दिन में घर जाते हैं अथवा सुन्दर चित्रों से प्यार करते हैं, उनकी सन्तान बाह्य सौन्दर्य–पूजक बनती है और कई बड़े आदमी पवित्र विचारों के इसी रोग में ग्रस्त देखे गए हैं। केवल किसी सुन्दर लड़के या नवयुवती की आकृति को ही देखने के लिए आना जाना या सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

९. मैथुन पर संयम रखने वाले कई स्त्री–पुरुष चुम्बन के आपस में बड़े इच्छुक होते हैं और यह दोष उनका सदा प्रेम का होता है तथा युक्त भी है, परन्तु इसका प्रभाव ऐसा देखा गया है कि धर्मात्मा और परोपकारी होते हुए जो संयमी है। गृहस्थ का भी त्याग है, किन्तु जीवन व्यवहार का है। वह भी पवित्र विचार से इस संसार के वश, दूसरे सदाचारी नवयुवकों को (अपने संग में आए हुओं को) चूमकर अपनी

इच्छा को पूरी करते हैं उसे यह कह देते हैं कि तू अब मेरा पुत्र है या छोटा भाई है। जिससे उसे उसके स्वत्व (जात) पवित्रता पर संशय न हो।

१.. कुछ स्त्रियां काम का भाव प्रकट न करके केवल यही चाहती हैं कि उनका पति उनके पास सोया करे और वह दोनों इसी भाव से तथा इच्छा से सोते हैं। उनकी सन्तान में यह विशेषता आ जाती है। कि वे दूसरे साथी के साथ सोने में ही बड़े प्रसन्न होते हैं।

११. कुछ बच्चे बचपन में मखौलिए होते हैं। जो माता–पिता मखौल और हंसी में प्रायः बातें बनाते रहते हैं उनके बच्चे ये संस्कार जन्म से ही साथ ले आते हैं।

१२. जो गर्भवती माता बात–बात में चिढ़ती, नाक भौं चढ़ाती तथा क्रोध से वस्तुओं को दे मारती है और पिता रात को अपनी छेड़छाड़ की करतूतें बातों में सुनातंा है उनके बच्चे क्रोध में सब वस्तुओं को तोड़ने फोड़ने वाले और शरारती स्वभाव के होते हैं। बिना हास्य किए उनको कल (चैन) नहीं पड़ती।

१३. जो स्त्रियां रात को गृहस्थ करके प्रातः काल उठती हैं। चक्की में आटा पीसती छाछ बिलौड़तीं और रोटी पकाती हैं, तदन्तर स्नान करती हैं उनकी सारी क्रिया अपवित्र और उनके पकाए भोजन करने वाले की बुद्धि में, मन में अपवित्र काम के संस्कार उत्पन्न होते हैं, दुर्वासनायें उत्पन्न होती हैं, क्योंकि, घर वाले और बच्चे खाते हैं। अतएव वे अपवित्र

वासनाओं से सुरक्षित नहीं रह सकते।

१४. पुरुष अपनी स्त्रियों से वेश्याओं जैसा रूप देखने की इच्छा करते हैं। (जो पुरुष स्त्री अकेले घर में होते हैं जिनके सिर पर मां–बाप, सास–श्वसुर आदि नहीं होते) स्त्री उसी प्रकार खाट पर बैठी बाल सिर के खुले हुए और आभूषणों से सजी हुई बिल्कुल बारीक कपड़े जिस से सारा शरीर दीखे पहने हुए होती है। जब पति घर में सोने के लिए आवे, गृहस्थ के समय भी उनके भाव वेश्यापन के होने से जो सन्तान उत्पन्न होती है वह वेश्या बन जाती है अथवा अति व्यभिचारिणी या व्यभिचारी बनती है।

१५. जो स्त्री–पुरुष सिनेमा आदि देखकर आते हैं और गृहस्थ के समय वही चित्र सामने रह जाते हैं तो सन्तान पैदा होने पर सिनेमा में एक्ट्रेस बनना पसन्द करती है चाहे सभ्य से सभ्य कुल की क्यों न हो।

१६. कुछ लड़के लड़कियां नवयुवक कुंवारे सिनेमा देखने जाते हैं तो किसी खेल से वे प्रसन्न हो जाते हैं। और फिर उनको ऐसा व्यसन पड़ता है, कि उसके बिना उन्हें चैन नहीं आती तो वही चित्र सदा सामने बने रहते हैं, इससे उनको हिस्टीरिया बीमारी हो जाती है और वे दौरे में भी वही कुछ बनकर पार्ट करते हैं और विवाह होने पर ऐसा संस्कार रह जाने से जो सन्तान उत्पन्न होती है वह भी सिनेमा की ऐक्टर या एक्ट्रेस बनना अभीष्ट समझती हैं।

१७. गर्भवती स्त्री यदि सिनेमा देखे और उस पर यदि

कोई कुप्रभाव पड़ जावे तो दुराचारी सन्तान उत्पन्न होती है।

१८. गृहस्थी यह भी भारी भूल करते हैं कि बच्चा सोया हुआ होता है तो उसी चारपाई पर सोए हुए गृहस्थ कर लेते हैं इससे बच्चे पर गुप्त रूप से दुष्प्रभाव पड़ता है बहुत बच्चे इस दोष से बच नहीं सकते। यदि बच्चे को कुसंस्कार से बचाना अभीष्ट हो तो कभी भी गृहस्थी अपने बच्चों के पास सोने वाले कमरे में समागम और संगम लीला न करें, नहीं तो उसी कमरे का वायुमण्डल उसके हृदय पर गुप्त रूप से संस्कार उत्पन्न कर देगा। क्योंकि बिना संकल्प किए भी बच्चे पर संस्कार पड़ जाते हैं।

१६. माता को अधिक से अधिक अपने बच्चे को अपने साथ तब तक सुलाना चाहिए जब तक बच्चे के पांव उसकी कमर तक पहुंचे। जब भी बगल से लेकर कमर के नीचे उसकी टांगे, बढ़ें, उसको अकेला सुलावें। इससे उसमें ब्रह्मचर्य की रक्षा के संस्कार उत्पन्न होंगे।

२. माता, जो पुरुष के साथ काम–जन्य प्रेम की क्रीड़ाएं कर रही है और इतने में बच्चा रो पड़ता है तो उसे स्तन से दूध पिलाती है जो स्तन काम की उत्तेजना के लिए साधन बना हुआ था, उसी से दूध पिलाती है, तो मानो ऐसे बच्चे को काम की घुट्टी अभी से उसे ही मिल जाती है।

२१. कभी गृहस्थ हो जाने पर (काम चेष्टा हट जाने पर) बच्चा रोता है तो माता बच्चे को तुरन्त स्तन से दूध देती है वह उष्ण और जोश दिया हुआ दूध जब बच्चा पीता है तो

प्राय: बच्चों की आंखें आ जाती हैं। अज्ञानी स्त्री–पुरुष यथार्थ की बात को न जानकर कई बार ऐसा करते हैं जिससे बच्चे की आंखों में कुकरे पड़ जाते हैं।

२२. माता बच्चे को गोद में उठाये हुए होती है और अकेले घर में पुरुष (पिता) आ जाता है तो जहां बच्चे को चूमता है वहां उसके सामने उसकी माता (अपनी स्त्री) को भी चूम लेता है और माता बच्चे को कहती है कि तुम भी पिता को चूमो तथा उसे साथ ले जाकर चुम्बन कराती है। ऐसा कुछ काल तक उन अज्ञानियों का खेल सा बना रहता है स्वयं भी हंसते हैं तथा बच्चा भी मुस्कराता है। यह क्रिया बच्चे के भीतर आरम्भ से ही काम के विकार उत्पन्न कर देती है।

२३. कभी–कभी स्त्री–पुरुष और बच्चों के एक शयन स्थान में दोनों ने एक–एक दो–दो बच्चों को पृथक्–पृथक अपने पास सुलाया हुआ होता है और काम चेष्टा होने पर दोनों चारपाइयों को छोड़कर भूमि पर गृहस्थ करते होते हैं यदि कोई समझदार बच्चा जाग पड़ता है और देखता भी रहता है तब वह भयभीत होकर उठ बैठता है कि क्या हो रहा है। इससे न केवल माता–पिता लज्जित होते हैं अपितु यह चित्र कार्य रूप में उस बच्चे के मस्तिष्क में जीवन पर्यन्त समाया रहता है जब वह माता–पिता को और उस स्थान को देखता है तो वह सारी क्रिया उसके सामने उपस्थित हो जाती है और फिर कई ऐसे बच्चे बचपन में लड़कियों के

साथ खेलते हुए बिगड़ जाते हैं।

२४. कुछ नवयुवती विधवा स्त्रियां शरदृऋतु में ५—७—९. वर्षों के सम्बन्धी बच्चों को साथ सुलाती हैं किसी को उनकी पवित्रता पर संदेह तक भी नहीं होता परन्तु प्रातः काल जब वह वाुय जो मदभरी हुई होती है चलती है। जो योगियों में तो ध्यान का नशा तथा विषयी पामर लोगों में काम का नशा चढ़ा देती है। इस समय बच्चों की मूत्र इन्द्रियां प्रायः अकड़ी हुई होती है तो वे स्त्रियां देखकर उनको अपनी छाती से लगाकर आलिंगन करती हैं उनकी टांगों को अपनी टांगों में देकर उनकी मूत्र—इन्द्रियों को अपनी इन्द्रिय से स्पर्श करती हैं, इसी प्रकार वे पुनः भींचती हैं तथा कहती हैं अच्छी तरह चिपट जाओ कहीं शीत न लगने पावे। बच्चों को तो उनके इस भाव का भी ज्ञान नहीं होता, पर वे स्त्रियां कुचेष्टा इसी से पूंरी करती हैं। जिससे उनका रज—पात हो जाता है तथा उनकी तृप्ति होती है।

२५. कुछ पुरुष अपनी स्त्रियों से टांगों पर मर्दन कराते समय जब कामातुर हो जाते हैं तब स्त्रियों की टांगों पर स्वयं—मर्दन करने के बहाने कपड़ा उतारते हैं और जघन्यस्थल स्पर्श करने से दोनों में काम का वेग उद्दीप्त हो जाता है और वे मर्दन के मध्य ही गृहस्थ करने लग जाते हैं। मर्दन एक व्यायाम है। इसलिए व्यायाम के समय बढ़ते हुए बल को उल्टा घटाना कई रोगों को उत्पन्न करता है।

२६. कतिपय पुरुष अपनी स्त्रियों से पैर दबवाते हैं (जब

थके होते हैं अर्थात् अपने पैरों को उसके पैरों से दबवाते हैं) और जब स्त्री के पैर फोतों के पास जघन्यस्थल पर आते हैं उस समय हाथ पकड़कर उसे अपनी जांघों पर बैठा देते हैं तथा कुचेष्ठा हो जाने पर पुरुष नीचे और स्त्री ऊपर इस अवस्था में ही गृहस्थ कर लेते हैं। यह दोनों के लिए हानिकारक है।

नोटः—अभिप्राय यह है कि गृहस्थ का कोई ढंग नहीं, क्योंकि ये लोग गर्भाधान के लिए गृहस्थ नहीं करते इसलिए जिस भी स्थिति में चेष्टा उत्पन्न हो गई वैसे ही टक्कर मार लेते हैं।

२७. नवविवाहित नवपुरुष अज्ञानवश कामातुर अधिक होते हैं। क्योंकि स्त्री पुरुष को इकट्ठे सोने की रीति है। आग और कपास का बैर है। अतः एक रात्रि में कितने बार पुरुष स्त्री से गृहस्थ कर लेता है (चिड़े चिड़या के समान) इससे कभी—कभी तो हानि यह होती जाती है कि गर्भ स्थिर नहीं होने पाता या स्त्री की काम—चेष्ठा भी बढ़ जाती है और उसके प्रतिक्षण यही संस्कार बने रहते हैं। उसे सब्जी बनाते आटा गूंथते वही संस्कार उपजते रहते हैं, जिससे वह भोजन भी अपवित्र तथा कामजन्य हो जाता है।

२८. कामी स्त्री—पुरुष की सन्तान निर्बल होती है। गर्भपात भी बहुत हो जाते हैं। कभी स्त्रियां एक बच्चा जनने के पश्चात् पुरुष का संग हो जावे तो दूसरे वर्ष बच्चा जनने वाली होती हैं। ऐसे गृहस्थियों का जीवन बड़ा सोचनीय होता

है। थोड़े ही दिनों में संतान अधिक हो जाती है और छोटी–छोटी होने के कारण सम्भाली नहीं जाती तब आवश्यक–रूपेण स्त्री–पुरुष में और बच्चों में क्रोध बढ़ जाता है और परस्परिक गृहकलह बना रहता है। पुरुष का स्त्री के हृदय में यथार्थ मान नहीं रहता। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। जिस प्रकार बच्चों के सामने प्रेम की कामजन्य क्रीड़ा का प्रभाव होता है इसी प्रकार गृहकलह संबंधी व्यवहार का भी कुप्रभाव पड़ता है। एक ग्रेजुएट बाबू का विवाह हुआ वह नौकरी में था। स्त्री–पुरुष दो ही थे। छः वर्ष में ५ बच्चे हो गये और सभी छोटे–छोटे। एक तो आयु छोटी दूसरा पूरा भरण–पोषण न होने के कारण निर्बल थे। रात्रि का समय था। स्त्री ने भोजनादि बनाना चाहा तो एक बच्चा रो पड़ा। उसको गोद में लिया तो दूसरा रो पड़ा अब दूसरे को गोद में लिया तो तीसरा रो पड़ा। अब पहले को गोद से उतार कर तीसरे को लिया तो पहिला रो पड़ा। उतरे ही न, क्योंकि एक तो बच्चों में इस प्रकार वैमनस्य होता है और दूसरे रात्रि के समय बच्चे मां से पृथक भी नहीं होना चाहते। माँ बड़ी व्याकुल हुई। बाबू जी भी खेलने गये थे, आये न थे, कभी बच्चों को मारती कभी आशा दिलाती, पर बिचारी क्या करती। कई बार ऐसे पहले बीत चुका था। बड़ी दुःखी रहती थी। नौकर रखने की शक्ति न थी। उस दिन विवश होकर, मानो क्रुद्ध होकर बैठ गई, और रोटी नहीं पकाई। बाबूजी मित्रों से विलम्ब करके आए। अपनी स्त्री से कहा–'क्यों,

आज रोटी नहीं पकाई?'

स्त्री क्रोध से चुप रही। बाबू ने कहा क्यों, क्या है क्यों मुख फुलाए हुए हो? कुशल तो है? स्त्री ने क्रोध से झुंझलाकर कहा—आप तो खेल कूद में मित्रों के साथ आनन्द करें और मैं अकेली टक्कर मारती रहूं। बच्चे चुप करते नहीं। एक को चुप कराती हूं दूसरा रो पड़ता है। आज तो मैं व्याकुल हो गई। मैं बच्चों को संभालूं या रोटी बनाऊं? बच्चे ऐसे मूर्ख हैं कि कुछ तरस नहीं करते। लो इनको सम्भालो, या रोटी आप पकालो मैं भूखी सो जाऊंगी।

और कृपा करके खेलने जाओ तो बच्चों को साथ ले जाया करो। दफ्तर के समय तो मैंने जैसे—तैसे करके संभाले अब रात्रि में मुझसे नहीं संभाले जाते।

पुरुष—गोद में लेकर पका लेती।

स्त्री—रोटी पका लेती, तुम्हारा सिर! गोदीं में एक को बिठाऊं या पांचों को?

पुरुष—फिर इतने क्यों उत्पन्न कर दिए, न करने थे।

स्त्री—लज्जा नहीं आती कहते हुए, चिड़े के समान तो तेरी इच्छा नहीं मरती, फिर दोष भी मुझे देता है।

पुरुष—बस बक—बक मत कर।

स्त्री—तो फिर और विवाह कर लेता। मेरी आपत्ति के लिए ही तू लिखा था।

पुरुष—यह मुझे न सुना। अपने पिता को जाकर कहो। मैं बी.ए. में ही पढ़ता था तो तेरा पिता मिन्नत पर मिन्नत

करता था।

स्त्री—तभी तो तू अभिमान में चूर रहता है कि मेरे माता पिता ने तुम्हारे गले में मुझे बाँध दिया इतने हजारों रुपये भी 'दहेज' में दिये। कोई तुमने मेरे सुख के लिए नौकर भी रख दिया है!

पुरुष—मुझे पता था कि मैं बी.ए. करूंगा और नौकरी न मिलेगी। तेरा पिता तो यही विचार करता था कि बी.ए. हो जाएगा तो कहीं जज या डिप्टी बन जायेगा।

स्त्री—हां, वह तो यही समझता था फिर क्यों न बनें?

पुरुष—मेरे कोई अधिकार की बात है प्रयत्न किया, सफलता न हुई। अब तू अपने भाग्य को रो। यही तेरा प्रारब्ध है कि वेतन में भी पूरा नहीं पड़ता। एक का बूट लूं तो तू कहती है शेष चार हैं, पांचों के लो। एक कोट सिलवाता हूं तो तू कहती है बच्चे कोई अनाथ हैं। सर्दी है इनको भी बनवा दो।

अच्छा अब रोटी पकेगी? या मैं होटल में खा आऊं, मुझे तो भूख लगी है।

बहुत घरों की अवस्था नरक की सी होती है। उसका कारण केवल कामी पुरुष है। स्त्रियां बेचारीं बड़ी व्याकुल रहती हैं। और कामी पुरुष कभी तृप्त नहीं हो सकता। काम से ही क्रोध उत्पन्न होता है। काम, क्रोध और लोभ नरक के तीन द्वार हैं। या इस प्रकार समझो कि ऐसे गृहस्थियों का घर (जीवन रूपी कीचड़) नरक का महल है। जिसकी छत

नंगी है, दीवारें अहंकार की हैं और फर्श मोह का है तथा तीन कमरों के तीन फाटक हैं। विषयानन्द के कमरे का फाटक काम है। ठगी के कमरे का फाटक लोभ और लड़ाई अथवा बैर के कमरे का फाटक क्रोध है। ऐसे मनुष्यों के गृहस्थ का समस्त कार्यक्रम बिगड़ा हुआ होता है।

पुत्र! तुमने समझ लिया कि माता–पिता की आज्ञा न मानने से कैसी–कैसी बुराइयां सन्तान में आ जाती हैं। काम वशीभूत पुरुष उपाय सोचते रहते हैं कि किसी प्रकार सन्तान न बढ़े अर्थात् सोचते रहते हैं कि किसी प्रकार सन्तान न बढ़े अर्थात् सन्तान तो उत्पन्न न हो और हम आनन्द का जीवन बिताया करें। औषधियां पूछते रहते हैं और स्त्रियों को खिलाते रहते हैं। मुझसे भी कई ऐसे विषयी लोग आकर कहते हैं कि कोई चिकित्सा बताओ, जिससे अब और सन्तान उत्पन्न न हो। इस पर मैं उत्तर देता हूं कि गृहस्थ करना बन्द कर दो। तो कहते हैं–जी! यह तो बड़ा कठिन है। अधिक सन्तान होने पर सम्भाली नहीं जाती। निर्धन मनुष्य हैं। पेट पाल नहीं सकते, उनको पढ़ा नहीं सकते मूर्ख रह जायेंगे। साधारण सम्पत्ति बांट भी नहीं सकेंगे, झगड़े करेंगे, फिर हमारा तथा हमारे पूर्वजों का नाम कलंकित करेंगे।

सत्यव्रत–दस सन्तान तक उत्पन्न करने के लिए तो श्री स्वामी जी ने लिखा है–और दूसरा आप से क्यों पूछते हैं आप कोई वैद्य तो नहीं क्या आप कोई दवाई जानते हैं?

ज्ञान–दस सन्तानों के उत्पन्न करने की जहां आज्ञा है

वह नियम है कि २५ वर्ष सारे गृहस्थ के मध्य दस सन्तान तक उत्पन्न करें 'सुपुत्रां" सुभगां कृणु" अर्थात् उत्तम सन्तान और हर प्रकार का सुख भागने वाली बना न कि अनावश्यक पैदा करे और सन्तान की इच्छा से गर्भाधान करे न कि कामातुर होकर विषय भोग करे तथा सन्तान भूल से उत्पन्न हो जाए। पीछे तुम को बतलाया कि ६ वर्ष में पांच सन्तान उत्पन्न होंगी तो ऐसा मनुष्य २० सन्तान उत्पन्न करेगा २५ वर्ष में। आजकल ऐसे मनुष्यों की अधिकता है और सुनो कि कितने बच्चे उत्पन्न होते हैं तथा कितने मरते हैं।

पिछली जनसंख्या १६२८ में भारतवर्ष में ८८ लाख शिशु उत्पन्न हुए। लड़के ४६ लाख और लड़कियां ४२ लाख। जिनमें ६२ लाख बच्चों की मृत्यु हुई। जिसमें १/४ (एक चौथाई) अधिक छोटे बच्चे एक वर्ष से कम के ८ लाख तो प्रथम मास में मर गए और ५ लाख ७ दिन भी श्वास न ले सके।

विद्वानों का कथन है "बालो बलं हि राष्ट्रस्य" अर्थात् बालक ही किसी राष्ट्र के बल होते हैं। बालक प्राण है, गति, जीवन शक्ति तथा उस देश का सर्वस्व है।

किसी भी राष्ट्र की सुख–सम्पत्ति का यथार्थ ज्ञान उस देश के बच्चे के स्वास्थ्य से होता है। यूरोप आदि स्वतंत्र ऐसे देशों में बच्चों का भरण पोषण कराया जाता है और उनकी माताओं को उपहार दिए जाते हैं।

सौ मूर्खों से एक बुद्धिमान अच्छा है। एक सन्तान ही

यदि सुयोग्य उत्पन्न की जाए और उसकी शिक्षा और सदाचार के लिए सारा बल लगाया जाए तो वही सबसे अच्छा है। अब दूसरी बात कि मुझसे क्यों पूछते हैं।

मैं सेवा करने वाला मनुष्य हूं। लोगों को मुझ पर विश्वास है अपना शुभ चिन्तक समझकर पूछते हैं। यह भी एक दुःख है, उन बिचारों के लिए प्रत्येक वर्ष सन्तान उत्पन्न हो जाए तथा उन पर नूतन बोझ पड़ जाये। दूसरा यह भी किसी को सन्देह हो सकता है कि सत्यव्रत के उत्पन्न होने के पश्चात् कोई सन्तान इन्होंने उत्पन्न नहीं की। सम्भवतः कोई दवाई की हो, किन्तु यह विचार उनका भ्रममूल है पूछ लो अपनी माता से। मैं अब उसे अपना मित्र सखा समझता हूं।

अठारह वर्ष से जब से हमको यह ज्ञात हुआ है कि ब्रह्मचर्य अमूल्य वस्तु है और गृहस्थ हमें इसलिए नहीं मिला कि हम विषय भोग में रत रहें। गृहस्थाश्रम बड़ा पवित्र और स्वर्गाश्रम है। यह आश्रम तो परोपकार के लिए तीन ऋणों से मुक्त होने के लिए मिला है न कि विपरीत ऋणी होने के लिए। निःसन्देह मैंने भी अपने गृहस्थ के समय में लोगों जैसी कुचेष्टाएं कीं। यद्यपि सारी न की होंगी, तो भी कुछ न कुछ का तो मैं दोषी हूंगा ही। तेरे पश्चात् एक लड़की उत्पन्न हुई, उससे तेरी माता को अत्यधिक कष्ट हुआ और वह मृत्यु शय्या पर पहुंच चुकी थी। हम सब निराश और रो पीट चुके थे। ईश्वर ने कृपा की लड़की मर गई, तेरी माता बच गई। तब से मैंने प्रतिज्ञा की कि अब मैं गर्भाधान की

क्रिया तो क्या स्त्री को अपने गृहस्थ के प्रेम का साधन नहीं समझता। यह मित्र है, सखा है, मेरे सब ऋण उतारने का उत्तम साथी है। यह विचार था तो स्वाध्याय करने से, परन्तु परिपक्व न हो सका था, वह हुआ दुःख और आपत्ति से। मैं बहुत निर्लज्ज क्रियाओं से बचा रहा। इसलिए कि जब विवाह हुआ, मुझे और तेरी माता दोनों को बात करते हुए भी लज्जा आती थी, क्योंकि हमारा विवाह पुरानी शैली में बचपनमें १५, १६ वर्ष की आयु में हो गया था। स्त्रियों का स्वभाव है वे कई विवाहिता से पूछती हैं। नवविवाहिता नवविवाहिताओं से सब समाचार लेती हैं। स्त्रियां परस्पर समाचार देने से लजाती नहीं। यहां तक कि अपनी माताओं को भी समाचार दे देती हैं, क्योंकि हमारे यहां कोई कुकर्म होता नहीं था, दूसरी स्त्रियां आपबीती सुनाती थीं। तब जितने ही समाचर लगभग ज्ञात हुए वे तुम्हारी माता से विदितं हुए। मुझे तो इस बात की लज्जा सी आई कि स्त्रियां अपना भेद प्रकट कर देती हैं। यदि हमने भी कोई अनुचित बातें कीं तो मेरी स्त्री भी बता देगी। जिससे मैं संयम करके बचा रहा। हम ने अपना जीवन बनाने का प्रयत्न किया और तुम्हारे लिए भी इच्छा रखी क्योंकि तुम हमारी कुचेष्टाओं और मूर्खताओं और मूर्खता के दिनों में पैदा हुए हो। अतःएव तुम पर अवश्य कुछ न कुछ प्रभाव पड़ा होगा। परन्तु सौभाग्य से तुम को समयानुकूल समस्त बातें समझा रहे हैं। यदि तुमने आचरण किया तो तुम्हारी सन्तान आदर्श बन सकेगी। शास्त्रकार तो यह बतलाते

हैं, कि बच्चे का जीवन आदर्श है। अतः उस को बनाने के लिए कोई आदर्श उसके सामने रखा जाना चाहिए।

अब मैं दूसरा कारण जो युवावस्था में कुसंग से होता है, बतलाता हूं। मनुष्य की वाणी का व्यवहार सर्वदा दूसरे से रहता है। क्रोध और झूठ इसके दो भारी दोष हैं।

१. क्रोध यथार्थ में इतनी बुरी चीज नहीं परन्तु क्रोध और झूठ से मनुष्य वीर्य की रक्षा नहीं कर सकता। क्रोध शरीर को अत्यन्त तपा देता है। अतएव सम्भव है कि एक नवयुवक लड़का जिसके माता–पिता ब्रह्मचारी न थे, वह किसी समयक्रोध में आने से वीर्य पात के रोग में लिप्त हो जावे।

२. जो मनुष्य झूठ बोलता है, वह प्रायः अपने मन में कोई न कोई उपाय विचारता है और समस्त दिन वह एक पटकार (जुलाहे) के समान अपने मस्तिष्क में विविध प्रकार की उधेड़–बुन करता रहता है। ऐसे मनुष्य कभी शांत नहीं रह सकते। उनके आभ्यन्तरिक व्यवहार सर्वदा उत्तेजित रहते हैं। इससे 'कामेन्द्रिय' अति शीघ्र उत्तेजित हो सकती है। ऐसी विलायत के डाक्टरों की सम्मति है।

३. उपन्यास तथा शृंगार सम्बन्धी गीत गाने पढ़ने से कभी उसी क्षण मनुष्य की कामेन्द्रिय उत्तेजना हो जाती है और वह वीर्यपात कर बैठता है। जो लोग प्रतिदिन नावल पढ़ते है उनके अन्दर बारम्बार उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है। उनमें उत्तेजित विचारों के बार–बार उत्पन्न होने से कामेन्द्रिय की नसों में सर्वदा थोड़ी या अधिक निर्बलता और अनुचित

खाज उत्पन्न हो जाती है इसका परिणाम यह होता है कि कर्तव्य कार्य में निर्बलता आ जाती है। प्रायः अतिशय अनुचित खाज और जलन उत्पन्न कर देती है। और भी आभ्यन्तरिक अंगों जैसे—मस्तिष्क, पेट, फेफड़े, गुर्दे और हृदय आदि की रचना में भी क्षोभ पहुंच जाता है। अस्तु जब ऐसी घटना जैसे——क्रोध, चिन्ता और शोक आदि अधिकतर और निरन्तर उत्पन्न होते हैं तो आभ्यन्तरिक जोड़ों में निर्बलता उत्पन्न होकर रक्त में जलन उत्पन्न हो जाती है तथ मूत्र—इन्द्रिय की रगें दूसरे अंगों की रगों के साथ इस सामान्य उकसाहट और अनुचित उत्तेजना में भाग लेते हैं। (यह डाक्टर ग्राहम अपनी पुस्तक में लिखते हैं)।

एक मनुष्य अपने मन में बुरे विचार रखता हो परन्तु आचरण बुरा न कर सके और ऐसे मलिन मन के होने पर भी वह अधिकं दुर्व्यवहार के अन्त तक न पहुंच सके तब भी उनका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। कितने लोग वीर्यपात के रोग में केवल अपने विचार के कारण ही फंस जाते हैं। विचार की पवित्रता के बिना ब्रह्मचर्य नहीं रखा जा सकता। डाक्टर ग्राहम लिखते हैं—सम्भव है कि एक मनुष्य बिना काम क्रिया किए भी केवल मन की अपवित्रता के कारण पतित हो जाता है।

४. जहां स्कूलों में और कालेजों में उपन्यास पढ़ाए जाते हैं। वहां के लड़कों को सदा वीर्यपात का रोग हो जाता है। एक डाक्टर लिखते हैं——इंग्लैंड के पब्लिक स्कूलों में ६०

प्रतिशत लड़के गिरे हुए हैं। छोटे से बच्चे पर यदि शृंगारिक गाने या शब्दों का चित्र जम जावे, जिसे कि दुनिया की हवा अभी नहीं लगी तो उसके मस्तिष्क से हटना भी बहुत कठिन हो जाता है। आजकल तो प्रसन्नता से स्त्रियों और बच्चों को सिनेमा में ले जाते हैं। डाक्टर इस्ताल जिसने अपने जीवन का एक बड़ा भाग विद्यार्थियों के आचार ठीक करने में लगाया है, कहते हैं संसार में कितने मनुष्य ऐसे मिलेंगे जो इस बात के लिए पुकारते रहते हैं कि उनके मन पर एक मलिन दृश्य का चित्र जम गया है। वे हजारों पौण्ड देने को उद्यत हैं यदि कोई मनुष्य उस चित्र को उनके मन से दूर कर दे, परन्तु शोक है कि कोई उनकी आशा पूर्ण करने वाला ही नहीं मिलता। क्योंकि यथार्थ में श्रृंगारिक भाव उनके मन पर एक ऐसा चित्र खींच देता है, जिनका मिटना प्रायः असम्भव हो जाता है। अतएव बच्चों के हाथों में शृंगारिक पुस्तकों और असभ्य चित्रों तथा असभ्य खिलौनों को कदपि नहीं देना चाहिए।

५. अपने भाइयों के अतिरिक्त दूसरे मित्रों के साथ चुम्बन आदि या विशेष प्यार करना बड़ा अनुचित है। अकेले दो लड़कों का पढ़ना भी कभी–कभी घातक हो जाता है, जब कि छोटे बड़े हों और छोटा रूपवान हो।

६. लड़के और लड़कियों के (जैसे स्वामी जी महाराज ने लिखा है कि पांच वर्ष से बड़ा लडका लड़कियों से न खेले और उनकी पाठशाला में न जावे' केवल एक दूसरे के साथ

मिलने से भी कामेच्छा के बढ़ाने वाले साधन उत्पन्न हो जाते हैं।

बाइबिल में लिखा है—जो किसी स्त्री को बुरे विचार से देखता है वह पापी हो जाता है, यद्यपि उनको पाप करने का अवसर मिला हो।

७. बच्चों और नवयुवकों को पशुओं, पक्षियों और मनुष्यों को भोग करते हुए नहीं देखना चाहिए। एक दूसरे के साथ अत्यन्त निकट और बहुत मिल जुल कर नहीं रहने देना चाहिए, तथा उनको दुराचारिणी स्त्रियों से दूर रखना चाहिए।

८. नवयुवकों को ब्रह्मचारी को कोमल बिछौनों पर नहीं सोना चाहिए।

९. गाने, बजाने, नाचने, सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग और अंजन लगाने से विद्यार्थियों को घृणा करनी चाहिए तथा चाय, काफी एवं मसालेदार चटनियां, अचार, अधिक तेल का मर्दन और कामेन्द्रियों को बिना आवश्यकता से छूना बड़ा निषिद्ध है। इससे चाल—चलन बिगड़ने और वीर्यपात के रोग लग जाते हैं। आजकल के प्रायः नवयुवक विद्वान (ग्रेजुएट) यह इच्छा करते हैं कि हमारी सगाई (मंगनी) वहां हो जो लड़की बाजा बजाना और सुन्दर गाना जानती हो, यही विचार यदि एक भक्त के हों तो अच्छे विचार हैं। अन्यथा सामान्य अवस्था में काम जन्य विचार हैं। संस्कार—दीपिका तथा संस्कार चन्द्रिका के सम्पादकों ने विशेष स्पष्टता से इस विषय में और बहुत कुछ बातें लिखी हैं।

नोट :—बच्चों का शुभ चाहने वाले माता और पिता को चाहिए कि बच्चों का पूरा और बड़ा ध्यान रखें। वे माता–पिता बड़े भाग्यवान् है जो अपने धन कमाने की चिन्ता से अधिक सन्तान की चिन्ता करते हैं। अपने बच्चों को अपने सामने खिलाओ–पिलाओ, अपने समक्ष सुलाओ और अपने समक्ष पढ़ाओ। यदि ऐसा न हो सके तो कभी–कभी गुप्त रूप से उनकी परीक्षा लिया करो। इस विषय में किसी पर विश्वास न करो।

षष्ठम सोपान

सत्यव्रत और सन्तोष कुमारी–दोनों को अपने–अपने स्थान पर पृथक्–पृथक् उपदेश हो चुका था। दोनों अपनी ओर से माता–पिता के डर से तथा कुछ यथार्थ ज्ञान हो जाने से शुद्ध विचारों का जीवन बिताने लगे थे कि उनके विवाह की तिथि भी निश्चित हो गई। अपने–अपने घरों में वैदिक मर्यादा के अनुसार और अपनी बिरादरी के लेन–देन की रीति के अनुकूल कार्यक्रम करते रहे। सत्यव्रत को यज्ञ की वेदी पर मुकुट (सेहरे) से सुसज्जित कर बरात के साथ दयावन्ती के गांव में ले गए तथा मर्यादा और शक्ति के अनुसार लड़की वालों ने बरात तथा वर का स्वागत किया और विवाह का कार्यक्रम पुरोहित (जो बड़ा धर्मात्मा, निर्लोभी, परोपकारी और वेदशास्त्र की मर्यादा को जानने वाला था) के द्वारा होता रहा। सब स्त्री और पुरुष इस दृश्य को देखकर और पुरोहित जी की व्याख्या एक–एक मन्त्र को सुनकर

गद्—गद् हो रहे थे। पुरोहित जी पहले मन्त्र के अर्थ को दोनों वर और कन्या को समझाते और उनसे पूछते स्वीकार है? जब वे कहते कि हां हमें स्वीकार है, तब उनके मुख से कहलवाते और बड़े प्रेम मधुर शब्दों में उनकी स्वीकृति लेते, पुष्प माला आसन जल आदि देकर मधुपर्क का कार्य पाणिग्रहण, लाजा होम और राष्ट्रभृत आदि जब पूर्वार्द्ध के सम्पूर्ण कार्य पूर्ण हो चुके तब पुरोहित जी ने कहा—भाई, कुछ विश्राम कर लो। उतरार्द्ध की विधि से लोगों का उतना सम्बन्ध नहीं। तुम दोनों की आवश्यकता प्रतिज्ञायें हैं। विश्राम के अनन्तर कार्य प्रारम्भ होगा फिर पुरोहित ने कहा—अब सप्तपदी की अन्तिम क्रिया को, जिससे तुम्हारा गांठ—जोड़ बंधा, उसमें तुम्हारा सम्बन्ध स्त्री—पुरुष का सत्य की प्रतिज्ञा या सौगन्ध लेकर बनाया गया है। तुम्हारा परस्पर अब आत्मिक प्रेम, आत्मिक सम्बन्ध बन गया है अब उसी की पुष्टि के लिए उत्तरार्द्ध का कार्य प्रारम्भ कराय जाता है। सम्पूर्ण कार्य करवाकर तथा समझा बुझाकर कहा—अब तुम गृहस्थी कहलाओगे। गृहस्थी के कार्यों को प्रारम्भ करने से पूर्व तीन रात्रि भूमि पर ही शयन करना होगा। ब्रह्मचर्य के रूप में।

अब जब बरात प्रस्थान करने लगी और सन्तोष कुमारी जो अपनी माता जी की गोद में पली, सब प्रकार का सुख पाया और भली—भांति शिक्षा पाई, अकेली—अकेली लड़की, जिसने १६ वर्ष में एक दिन भी माता से पृथक् होकर न व्यतीत किया, सम्पूर्ण आयु के लिए पृथक् हो रही है। पति

के आंचल से आंचल बंधा हुआ है।

श्वसुर (धर्म पिता) उसे ले जाने के लिए प्रतीक्षा किए खड़े हैं। यह बिचारी माता की प्यारी, माता के गले लगकर कूहकें मार–मारकर आंसुओं की नदी बहा रही है। यद्यपि माता विदुषी थी, जानती थी कि समस्त संसार की यही अवस्था होती चली आई है तथापि कलेजे के टुकड़े और आंखों की ज्योति को पृथक् करते हुए इसका भी रूदन शब्द प्रकट हो गया। अन्त में धैर्य धारण करके हाथ जोड़, गले वस्त्र डाल, अति नम्रता तथा शान्ति से कलप–कलप कर ज्ञानप्रकाश जी के चरणों पर गिर पड़ी और कहने लगी कि दूसरे से उत्पन्न हुई को ले जाना तो सरल है, किन्तु उसे आत्मीय (अपनी) बनाना कठिन सा काम है। अब मैं इसे आपके अधीन करती हूं। मेरी और मेरे परिवार की सारी पूंजी यही है। अब हानि लाभ, भलांई और बुराई के स्वामी आप ही हैं।

तत्पश्चात् अपनी प्यारी पुत्री की ओर एक दृष्टिपात करके उसे अन्तिम उपदेश दिया। "पुत्री अब तुझे माता का प्यार कहां मिलेगा।" (यह कहते हुए फूट–फूट कर रो पड़ी) पुरोहित ने कहा––"दयावन्ती! धैर्य धरो! ऐसी बातें कहकर फिर अपने और सन्तोष के मन को पिंघलाती हो।" दयावन्ती ने फिर कहा–बेटी! अब तेरी एक के स्थान पर दो माताएं हो गई हैं। मेरे पास आओगी तो मैं प्यार करूंगी। पति के घर जाओगी तो वहां तुम्हारी माता (पति की माता) तुम्हें मुझसे

अधिक प्यार करेगी। जैसे मैं तुमको मर्यादा समझाती थी उससे अधिक वह माता समझा देगी। तू और भी प्रसन्न हो कि तूने अपने पिता का मुख आज तक नहीं देखा था कि पिता क्या होता है। अब तुझे पिता (पति के पिता) भी सौभाग्य से प्राप्त हो गए। परमात्मा ने तुझे धर्मात्म पिता की शरण दी है। तू उनके मुख और छत्र–छाया को सर्वदा प्राप्त कर। पहले तुझे परमात्मा न बनावटी घर रहने को दे दिया था, जिसको तू अपना नहीं कह सकती थी। अब तुझे प्रभु ने तुम्हारा अपना ही निश्चित घर दिया है, जिसको तू अपना घर कह सकती है। पहले तू पराधीन थी। माता से रोटी मांगती थी, अब तुझे स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। अब तू कितनों की अन्न से सेवा कर सकेगी। सास, श्वसुर और पति सारे तेरी भेंट को स्वीकार करेंगे। द्वार पर आये अतिथि, साधु, अभ्यागतं (फकीर याचक) तेरे ही बनाये अन्न को अंगीकार करेंगे। तू बड़ी भाग्यवती है। आज से तेरा सौभाग्य चमक उठा है। पति के सौभाग्य से तेरा सौभाग्य निश्चल रहे। अब तेरी जाति बदल गई है। सास श्वसुर का पुण्य तेरा पुण्य है। तेरे दुर्भाग्य से उनको दुःख है। अतएव तू उसी घर को अपना घर जानना, वे ही तेरे माता–पिता हैं। मेरी ओर आशा न रखना। उनसे सुख मिले, उनसे कष्ट हो, प्रसन्नता से सहन करना भूल कर भी पति की, सास की और श्वसुर की बुराई न करनी। मैं हजार बार 'प्यार दे कर पूछूं' तुम उनकी भलाई ही सुनाना। कोई भी ऐसी बात नहीं करनी, जो तुझे

अच्छी न लगी हो। अपने घर की शुभाशुभ अवस्था की अपने पति के व्यवहार को चाहे वह कैसा भी हो अपनी दीवारों से (घर से) बाहर मत निकालना। जहां सम्बन्ध अटूट हो वहां सब प्रकार का आत्मसमर्पण अवश्य होता है। ईश्वर की कृपा से तुझे अच्छा परिवार मिल गया है। तुझे किसी प्रकार का दुःख अथवा क्लेश नहीं होगा। घर के समस्त काम अपने हाथों से करना। पति, माता–पिता (सास–श्वसुर) के लिए भोजन अपने हाथों से बनाना। अपने हाथों से आदर सहित भेंट के रूप में समर्पण करना अपना धर्म समझना। उनकी सेवा ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। धर्मानुकूल आचरण करना। अधर्म का सामना बड़ी गम्भीरता से करना, घर का सब काम सम्भाल कर और सबको शयन कराकर सोना। सबसे पूर्व आप जागकर घर का व्यवहार आरम्भ करना। शुद्ध पवित्र होकर सब कार्य करना। चक्की चरखा और दूध मन्थन आदि नियमपूर्वक करते रहना। घर के सारे सामान, धन सम्पत्ति की स्वामिनी बनकर रक्षा करनी होगी। सेविका बनकर आज्ञा से खर्च करना। सास श्वसुर के परिवार को ही अपना परिवार जानकर उनकी सेवा करनी। पति के साथ दिन में मन्त्री और रात में सखा मित्र बनकर रहना। पति सूर्य है तू पृथ्वी बनकर रहना। पति मस्तिष्क है तो प्रेम (हृदय) बनकर रहना। पति प्राण है तो तू अन्न बनकर रहना। वह आत्मा है तो तू शरीर बनकर रहना।

माता ने अपनी पुत्री को अन्तिम सुन्दर उपदेश के साथ

पति और उसके पिता के आधीन कर दिया। बरात नगरों के साथ अपने घर पहुंच गई। रात्रि को वे दोनों पूर्व कथित मर्यादानुसार भूमि पर नीचे सोये। प्रातःकाल यज्ञ की वेदी बनाकर सारा परिवार यज्ञ में आकर सम्मिलित हुआ। यज्ञ करने के पश्चात् ज्ञानप्रकाश जी ने अपने पुत्र और पुत्रवधू को उपदेश देना आरम्भ किया :

प्यारी सन्तोष ! तू मेरी पुत्री है। मुझे पिता कहकर सदा पुकारा करो। सत्यव्रत का अब तक मैं पिता था, किन्तु पुत्र यह अब बना है। मेरे शब्दों में अति गम्भीर तात्पर्य है थोड़ा इस पर विचार करना। पुत्र वह होता है जो माता–पिता को नरक से बचावे। गृहस्थ का जीवन स्वर्ग तथा नरक है। यदि अब तुमने गृहस्थाश्रम को मर्यादा से निभाया तथा आज्ञा और नियम में रहे तो संसार में हमारी कीर्ति और यश होगा। हम सर्वदा तुम्हें आशीर्वाद देते रहेंगे। अब हमारा कर्तवय केवल तुम्हारी देखभाल करने तथा दोष दर्शाने और कहने का है। कमाना, खिलाना और सेवा करना आदि सब नितमर्यादा का पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है। विवाह इसलिए होता है कि गृहस्थ सम्बन्धी कर्तव्यों को भली भांति समझकर मनुष्य अपने स्वजातियों के लिये शान्ति तथा अमृत की वर्षा इस मर्त्यलोक में लाए। यह संसार जटिल समस्याओं का केन्द्र है, परन्तु दीर्घदर्शियों के लिए सादगी का आदर्श है। यह सब समस्याओं मनुष्य स्वयं उत्पन्न करते हैं, न कि परमात्मा। गृहस्थी को परमात्मा ने अपना स्थानापन्न बनाया है। (१)

सृष्टि की उत्पत्ति का कार्यक्रम गृहस्थी से ही स्थिर रहता है। (२) स्त्री–पुरुष, आत्मा से आत्मा, मिलकर एक दूसरे को बल तथा आश्रय देते हुए, परमात्मा का आदेश पालते हुए हाथ में हाथ दिए मुक्ति के द्वार तक पहुंचे। (३) परोपकारमय जीवन का आरम्भ यहां से होता है।

तुम दोनों ने विवाह समय बहुत प्रतिज्ञायें की हैं, अब उनका पालन करना तुम्हारा धर्म है। संसार में गृहस्थ का आदर्श त्याग और प्रेम का है। सन्तोष ने किस प्रकार त्याग किया, यह तुमने देख लिया। अब तुम्हारे प्रेम की बारी है। स्त्री और पुरुष का संयोग तथा प्रेम निःस्वार्थ तथा पारस्परिक मैत्री–सम्बन्ध से होता है। माता–पिता और पुत्र का प्रेम भी वास्तविक प्रेम है परन्तु इसमें माता–पिता अपनी सन्तान से निःस्वार्थ प्रेम करते हैं। परन्तु सन्तति माता–पिता से प्रेम नहीं करती और जब करती भी है तो स्वार्थ भाव से, क्योंकि लेने वाला कभी सच्चा प्रेम नहीं कर सकता देने वाला ही सच्चा प्रेम कर सकता है। माता–पिता सन्तान से इसीलिए प्रेम करते हैं क्योंकि वह उनके पेट से पैदा हुई होती है। वह स्वाभाविक प्रेम है। कुतिया का भी अपने बच्चे से प्रेम होता है। गाय का भी अपने बछड़े से जो प्रेम होता है, वह कृत्रिम नहीं होता। परन्तु पति–पत्नी का प्रेम भिन्न–भिन्न जातियों तथा विभिन्न–विभिन्न स्थानों से होता है। भिन्न–भिन्न माता–पिता से होकर एक दूसरे को अपनाते हैं और अपनवाते भी ऐसा हैं कि उनमें पृथकत्व नहीं। दो शरीरों में एक आत्मा हो जाते

हैं। माता—पिता का प्रेम सब जनता में विख्यात हो रहा होता है परन्तु स्त्री पुरुष का प्रेम इस प्रकार का विचित्र है कि बड़े—बड़े कुटुम्बों में रहते हुए भी उनको कोई दूसरा देखने नहीं पाता। यही गुप्त प्रेम त्यागमय जीवन का, परमात्मा से गुप्त प्रेम अटूट सम्बन्ध जोड़ने का, एकान्त में अनन्य भक्ति को सिखलाता है। स्त्री अपना सर्वस्व समर्पण करके अपने पति की सारी सम्पत्ति, कीर्ति तथा उपलब्धियों आदि की स्वामिनी बन जाती है। ऐसे ही भक्ति भी अपना सब कुछ अर्पण कर के भगवान की सम्पूर्ण उपाधियों और अधिकारों से पुकारा जाता है। गृहस्थ ही स्वर्गरूप आश्रम है। पति—पत्नी यदि विवाह के इन प्रतिज्ञा मन्त्रों को ध्यान में रखें तो वे अपने आप ही दूसरे के पथ—प्रदर्शक बन सकते हैं। बस! अब मुझे इससे अधिक और कुछ नहीं कहना। अब तुम माता—पिता की छत्रछायां का आश्रय लो। अपना पितृऋण पूर्णकरो। ऐसा आदर्श गृहस्थ व्यतीत करो कि हमारा तथा अपना नाम अमर कर दो। कई बार तुम्हारी पारस्परिक अनबन होगी। तुम दोनों युवा हो। अभी संसार में प्रवेश कर रहे हो। प्रथम तो तुम अपने माता पिता पर आश्रय और गौरव रखते थे, रूठ भी जाते थे तुम्हें माता मनाती थी। तुम्हारे रूठने में कोई अपवाद भी नहीं होता होगा। बच्चे रूठा ही करते हैं। यदि अब तुम आपस में रूठोगे तो प्रतिज्ञा भंग करोगे। यदि सत्यव्रत रूठा तो सन्तोष किसकी आश्रित होगी और यदि सन्तोष रूठी तो सत्यव्रत का धर्म कौन

सम्भालेगा दूसरों को कहोगे तो अपमान होगा। धर्म से जीवन व्यतीत करो। यदि एक को अधर्म का विचार आए तो दूसरा उसे सौहार्द से रोके तथा अधर्म से बचावे। तुम एक दूसरे के स्वामी–स्वामिनी हों। एक दूसरे के सेवक–सेव्य हो। एक–दूसरे के गुरु–शिष्य हो। राजा–मन्त्री हो और सबसे बढ़कर जो तुम्हारा पवित्र सबन्ध है, वह है सखा और मित्र का। जो सप्तपदी में अन्तिम सोपान तथा अन्तिम पदवी बतलाई गई है। गृहस्थ मार्ग में कई उलझनें आयेंगी, परन्तु उलझनें तुम्हारी ही तृष्णाओं से उत्पन्न होंगी। आवश्यकता के लिए कोई उलझन उत्पन्न नहीं होती। तृष्णा की तृप्ति के लिए ही उलझन खड़ी होती है। जिसे तुम स्वयं न सुलझा सको उसे हम से ही सुलझवाओ। हम जो जानते होंगे बतला देंगे। पारस्परिक क्षमा के भाव बनाए रखना। सम्मान का व्यवहार रखना परमात्मा का सदा स्मरंण किया करना। नवविवाहित गृहस्थियों में सबसे बड़ा दोष जो सर्वप्रथम आ जाता है वह है परमात्मा से विमुख रहना। दूसरा दोष माता–पिता से निरपेक्षता, तीसरादोष सत्संग से प्रमाद चौथा दोष अमर्यादित गृहस्थ करना। इन सबका मूल कारण कामजित न होना। एक और बात स्मरणीय है कि दान, सेवा, भक्ति तथा स्वाध्याय आदि में कभी सन्तोष न करना और स्वपत्नी, स्वपति तथा स्वधन में सर्वदा सन्तोष जानना और मानना। पत्नी के लिए पति जैसा कोई और दिव्य भूषण नहीं तथा पति के लिए पत्नी जैसा कोई और सौन्दर्य नहीं। यही

पतिव्रत धर्म तथा पत्नीव्रत धर्म की अनोखी पहिचान है।

सप्तम सोपान

वर–वधू दोनों पुरोहित की आज्ञानुसार पृथ्वी पर सोते रहे। दोनों में उत्कण्ठा रही कि वे परस्पर बोल सकें, परन्तु घर में बहुत सारे सम्बन्धियों के होने से लज्जावशात् वे न बोले। तीन दिन–रात गुजर गए। चौथा दिन हुआ तो सत्य के हृदय में नाना प्रकार के विचार उठते रहे। एक तो पढ़ा–लिखा, दूसरा पुरोहित और पिता जी से अभी–अभी उपदेश ले चुका था। इसलिए संकल्प कर रहा था कि आज रात सच्चे प्रेम की रात होगी। खाना खाने के पश्चात् टहलने चला गया तथा रात्रि में जब शयन का समय आया तो अपने कमरे में चला गया तथा बिछे हुए बिस्तरे पर लेट गया। अपनी प्यारी धर्मपत्नी की प्रतीक्षा में लैम्प जलता रहने दिया तथा स्वयं करवटें लेता रहा। पुनः–पुनः उठकर देखता रहा। रात बहुत बीत गई, परन्तु अब तक उसकी प्यारी धर्मपत्नी नहीं आई। उठकर भोजनशाला गया। परन्तु वहां तो कोई है ही नहीं। सब कोई अपने–अपने कमरों में आनन्द से खर्राटे ले रहे हैं। अब हैरान कि क्या बुलाऊं? और कैसे बुलाऊं? किससे कहूं? क्या पूछूं देवी कहां गई? सारी रात लज्जा के मारे प्रतीक्षा में बेचैनी से कटी। वह बहुत व्याकुल होता रहा। अनेक प्रकार के संकल्प–विकल्प मन में आते रहे। कभी समझता कि शायद मेरे माता–पिता ने मेरी परीक्षा ली। कभी विचारता शायद नई दुलहन, बिना कहे या बतलाए पति के

पास कमरे में न आती या सोती होगी। कभी विचारता कि कदाचित् सन्तोष कुमारी अपने आप को अतिथि जानकर मेरी परीक्षा कर रही होगी। कभी विचारता कि शायद वह शास्त्र मर्यादा थी और यह वर्तमान की हमारे कुल की मर्यादा है। इस प्रकार संकल्प विकल्पों का संग्राम होता रहा। एक तो जवानी का जोर था और कुछ काम चेष्टा भी आकर दबाती, बेचारा बहुत व्याकुल हुआ। इसी प्रकार प्रातःकाल हुआ। उठकर चला गया। नित्यकर्मों से निवृत्त होकर स्नानादि करके घर में आया और तो सारा परिवार यज्ञ मण्डल में एकत्रित हुअ परन्तु सन्तोष कुमारी अब तक भी नहीं आई थी। अब उससे रहा न गया। माता से पूछा 'सन्तोष कुमारी क्यों नहीं आई' तो माता ने कहा 'वह बीमार है' जब किसी स्त्री को रजोदर्शन हो तो स्त्रियां पुरुष के सम्मुख ऐसा कहती हैं। तुम यज्ञ आरम्भ करो। अब हाथ और वाणी तो यज्ञ का कार्य कर रहे हैं। परन्तु मन में अनुमान हो रहा है कि बेचारी कल रात से बीमार हो गई होगी, मैंने सुध भी न ली। मैंने विवाह के समय उसके केस संवारते हुए प्रतिज्ञा की थी और उसे आश्वासन दिया था कि तू बिल्कुल तसल्ली रख। मेरे यहां तुझे किसी प्रकार का कष्ट न होगा। मैं तुम्हारा सब प्रकार से ध्यान रखूंगा। तुझे प्रसन्न व आनन्दित रखने के लिए भरसक प्रयत्न करूंगा। अब मन में क्या कहती होगी कि अभी पहिले ही दिन का यही हाल है तो आगे कैसे गुजरेगी? हवन आदि की क्रिया जब समाप्त हो गई तो

सत्यव्रत तुरन्त उठा और माता के कमरे में सबसे पहले चला गया वहां .सन्तोष कुमारी बैठी थी। देखते ही लज्जित हो गई। सत्यव्रत पास पहुंचा। प्रेमपूर्वक नमस्ते की और पूछा, क्या रोग है? मैं तो सारी रात तेरी प्रतीक्षा करता रहा। अब वह बेचारी जानती तो सब कुछ थी और मां ने उसे समझा भी दिया था तथा संस्कारविधि और वैद्यक ग्रन्थों में उसने पढ़ भी लिया था। अपने पति से संकोचवश क्या कहती, चुप ही रही। सत्यव्रत ने बड़े प्रेम और आदर से उसका हाथ पकड़ा–प्रिये, क्षमा करना मुझे तो कुछ मालूम न था कि तुम बीमार हो। मैं अपने स्थान पर अज्ञानता से दुखी रहा और तुम अपने स्थान पर। अब बेचारी देवी को मुख खोलना पड़ा और बोली–मेरा हाथ छोड़ दीजिए मुझे कोई रोग नहीं। मैं अशुद्ध हूं आपको मुझे छूना नहीं चाहिए और मुझे मुंह नहीं दिखाना चाहिए। सत्यव्रत सरल आदमी था। बड़ा विह्लव हो उठा कि यह बात क्या हो गई और यह कह क्या रही है। सत्यव्रत मोहवश प्रेम करने लगा। देवी बोली–स्वामिन् कृपा करो। आप बाहर चले जाइये नहीं तो आपका अपयश होगा। आपकी माता जी आने वाली होंगी। सत्यव्रत तब भी न समझ पाया। अन्त में देवी ने यह कहकर टाल दिया कि अच्छा अब आप जाइये मैं रात को बताऊंगी।

सत्यव्रत चला गया और दिन की घड़ियां गिनता रहा। दिन को रोटी खाई, रात को भी खाई। दोनों समय अपनी पत्नी को न देख पाया। रात्रि में अपनी चारपाई पर जा बैठा

और प्रतीक्षा करता रहा। अब सन्तोष कुमारी ने सोचा कि अब वहां कैसे जाऊं और उनको कह आऊं—रहस्य बतला आऊं। शायद उन्हें इस भ्रम का ज्ञान ही नहीं है। बहुत देर तक सोचती रही। अन्त में अपनी सास से कहा—माताजी प्रातः मेरे स्वामी आए थे और मुझसे पूछते थे क्या रोग है? मैंने कहा तो सही कि मैं अशुद्ध हूं—मुझे देखना नहीं, छूना नहीं परन्तु वे समझ न सके। आप आने वाली थीं। तब मैंने कहा, अब जाइये, रात को बतलाऊंगी। अब आज्ञा दें तो मैं कह आऊं कि रोग कोई नहीं ताकि वे चिन्तित न रहें। माता बोली—अच्छा बेटी, जाती तो हो ही साथ ही छोटी सी खटड़ी (पीढ़ी) लेती जाओ वहां ही नीचे सो जाना। (मां तो आखिर मां ही थी। जानती थी, नवविवाहित पुरुषों की क्या हालत होती है। स्त्रियां तो लज्जा की साक्षात् मूर्ति होती हैं। परन्तु पुरुष तो स्वतन्त्रता की हवा में पले हुए होते हैं। पाशविक विचारों से व्याकुल होते हैं। अच्छा और न सही तो आपस में बातें ही कर लेंगे। उसकी चिन्ता भी जाती रहेगी) सन्तोष कुमारी पीढ़ी उठाते—उठाते अपने पति के कमरे में जा पहुंची। सत्यव्रत तो पहले से ही घड़ियां गिन रहा था। उसे देखते ही उठ बैठा। देवी ने पीढ़ी नीचे बिछाई और बैठ गई।

सत्यव्रत—देवी जी! यह कैसी नई रीति है (हंसी से) मां के घर की है इसलिए यह पीढ़ी प्यारी लग रही है।

सन्तोष कुमारी—(मुस्कराहट से) आप स्वामी और मैं सेविका हूं! आपकी बराबरी मैं कैसे कर सकती हूं।

सत्यव्रत–तुम्हारी माता ने तो कहा था कि दिन को मन्त्री और रात को सखा बनके रहना। अब कैसे सेविका हो, अब तो रात है।

सन्तोष.–महाराज! मैं केवल आपको अपना रोग बतलाने आई हूं। आपका सखा बनकर अब नहीं आई।

सत्यव्रत–अच्छा तुम्हें जो बीमारी है वह मुझे पता है। ऊपर मेरे पास बैठो।

सन्तोष.–फिर आपको मेरी बीमारी का तो पता ही नहीं अगर होता तो ऐसा न कहते। मैंने तो कहा था कि मुझे छूना हीं नहीं।

सत्य.–लो अब बातें न बनाओ। क्या तुझे कोई छूत की बीमारी है, जिससे मैं भी बीमार हो जाऊंगा। उठकर दोनों हाथों से उठाया और अपनी शय्या पर बिठाकर आलिंगन करने लगा।

सन्तोष.–ओहो! स्वामिन् बड़ा पाप है। यह तो आप अनर्थ करते हैं।

सत्य.–अरी भोली! तुझे क्या हो गया। कैसी बातें कर रही है। अच्छी भली है और फिर वहम की बातें करती है। यही प्रतिज्ञा की थी कि–ओ३म् प्रमे पतियानः पन्थाः कलपतांऽशिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम्।

अर्थात्–मेरे पति का जो मार्ग है, वैसा ही मेरा मार्ग बने। और भी कई मन्त्रों से प्रतिज्ञा की थी मैं पति के अनुकूल उसके पीछे चलने वाली, उसकी आज्ञा का पालन

करनें वाली बनूंगी और एकाग्रचित से आपकी वाणी का श्रवण करूंगी।

सन्तोष.—महाराज! वे प्रतिज्ञायें तो मुझे याद हैं। हम दोनों ने एक दूसरे के अनुकूल रहने तथा एक दूसरे की बात को एकाग्रचित् से श्रवण करने तथा आचरण करने की प्रतिज्ञा की थी, केवल मात्र मेरी ही नहीं। आप तो मेरी वाणी को ध्यान और अनुग्रह से नहीं सुन रहे। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मेरे पति का जो मार्ग है वही मैं प्राप्त करूं। क्योंकि उसी से मेरी मुक्ति और कल्याण हो सकता है। मेरे देव! दूसरे मतों से यही तो भेद है। मेरा विवाह वैदिक रीति से हुआ क्योंकि आपका धर्म वेद था। इसलिए आपका—या मेरे पति का जो मार्ग हो सकता है वह वेद मार्ग ही है। मनुष्य की जुबान मार्ग नहीं है।

सत्य.—अच्छा अब बोलो, अब क्या कहती हो? जरा समझा बुझाकर कहो। पहेली बनाकर नहीं। मैं सावधानता से सुनता हूं।

सन्तोष.—हर एक स्त्री को महीने में तीन दिन ऋतु—जिसे मासिक धर्म कहते हैं—आता है। उन दिनों के लिए शास्त्रों की आज्ञा है कि स्त्री एकान्तवास करे पति को न देखे—कोई स्पर्श न करे। उस स्त्री के हाथ का छुआ हुआ पानी भी नहीं पीना चाहिए।

सत्य.—यह कोई शांस्त्र का नया वहम निकाला हुआ है। मैंने तो कहीं नहीं पढ़ा और गृहस्थ—सम्बन्धी जितने भी

उपदेश पिता जी ने मुझे बतलाये हैं–जिनका सदा ध्यान रखना चाहिए, उनमें इसका वर्णन तक भी नहीं किया।

सन्तोष–मेरे प्राणनाथ! मैं तो आपके पास ही बिक चुकी हूं। यह शरीर तो आपकी सम्पत्ति है। मेरे तो आप ही प्राण हैं। आपके बिना तो मुझे तो और किसी का आश्रय तथा सहारा नहीं। आप से मेरा अटूट तथा साश्वत सम्बन्ध है। मुझे आपकी आरोग्यता में ही सुख है। इसलिए मैं कोई बहाना नहीं करती। ना ही हंसी करती हूं। मेरे पूज्य देव! इन रात्रियों में स्त्री–पुरुष को पृथक्–पृथक् रहना चाहिए। नहीं तो बहुत हानियां होती हैं। मैं अब आपकी आज्ञा मानकर आ गई हूं और पीढ़ी पर बेशक यहीं सो जाऊंगी। आज दूसरी रात्रि है, दो रात्रि और क्षमा कीजिए फिर तीसरे दिन मुझसे बातें कीजिएगा। यदि मुझ पर विश्वास न हो तो कल संस्कारविधि ही पढ़ लेना।

सत्य.–मैं कल पिताजी से पूछ लूंगा। परन्तु मैं आपसे क्या बातें करना चाहता था–क्या–क्या पूछना चाहता था–कई प्रकार की बातें करनी थीं, ये सब उमंगे शिथिल पड़ गईं।

सन्तोष.–महाराज! पिताजी से नहीं पूछना, ऐसी बातें पुरुष नहीं करते, इसलिए तो उन्होंने आप को बतलाया नहीं। पुस्तक में ही देख लेना।

सत्य.–संस्कारविधि तो मैंने सारी विवाह से पूर्व ही पढ़ ली थी। मैंने तो कहीं नहीं देखा। पिताजी ने तो मुझे वे–वे बातें समझाई हैं जो मनुष्य किसी से करता ही नहीं।

सन्तोष.–ऐसा पूछने से आपकी बुद्धि की कमी को

प्रमाणित करना है। मैं ही पुस्तक से खोलकर दिखाऊंगी।

सत्य.–पिताजी ने कहा कि जो बातें हमारी समझ में न आवें वे हमसे पूछ लेना।

सन्तोष.–महाराज! वह तो उलझन के समय के लिए कहा था कि जब तुम दोनों से कोई बात सुलझ न सके। और यह भी कहा था कि उलझन इच्छा से पैदा होती है, आवश्यकता से नहीं। अब मैं तो सुलझा रही हूं, फिर उलझन नहीं रहेगी। और अब आवश्यकता नहीं इच्छा केवल आपकी है। अतएव पिताजी से पूछने का कष्ट आप कदापि न करें। सत्यव्रत विवश होकर सो गया। देवी अपनी पीढ़ी पर सो गई। सत्यव्रत को गरमी चढ़ी हुई थी, नींद नहीं आई। देवी तो पहले ही शांत चित्त थी, सोई और नींद आ गई। सत्यव्रत को शांति न आई करवटें बदलते–बदलते तीन बज गए। अब कामचेष्टा ने उन्हें अन्धा बना दिया था। वह व्याकुल होकर उठा। सब ज्ञान उपदेश उसे भूल गए थे। कुसंस्कार जागृत हो उठे थे। बहुत संभाला मगर संभाल न सका। विषय वासना ने उसे पलंग से खड़ा कर दिया। नीचे उतरा और देखा कि देवी की पीढ़ी तो बिलकुल तंग है, न टांगे पूरी फैलती हैं, न शरीर सारा समाता है। विचार हुआ कि पास ही सो जाऊं, परन्तु यहां स्थान ही न था। देवी उस समय चित्त लेटी हुई थी विषयवासना से विवश होकर उसने उसके ऊपर से कपड़ा उतारा। ठंड लगने से वह जग गई। तथा अचानक ही जागने से सामने आदमी को देख तो डर गई।

भय से कांपती हुई आवाज निकलने लगी। सत्यव्रत ने कहा, क्या है? क्यों घबरा गई? सन्तोष ने कहा, कि मैं डर गई थी—कि कौन है? सत्यव्रत ने कहा, मैं ही हूं, प्रिय! जब मैं विद्यमान हूं तो डर काहे का।

सन्तोष.—आप क्यों उठे? और मुझे क्यों जगाया? आज्ञा कीजिए, क्या आज्ञा हैं

सत्य.—आप उठकर मेरे पास सो जाइए, अब मुझसे नहीं रहा जाता। मैं काम से विवश हो गया हूं।

सन्तोष.—तभी आप कहते हैं कि मेरी उपस्थिति में आपको क्या डर है। डर तो तब नहीं रहता जब बहादुर का आश्रय हो।

सत्य.—क्या मैं कमजोर हूं?

सन्तो.—कमजोर तो जानवर भी नहीं होते, किन्तु वे सब आवाज से भाग पड़ते हैं। स्वामिन्! वीर तो वही है जो अपनी इन्द्रियों पर संयम रखे। दूसरे के शरीर को बांधना कोई वीरता नहीं। पिता जी का उपदेश था कि मैं आप दोनों को आदर्श गृहस्थी देखना चाहता हूं। इस आचरण से तो आदर्श पहले ही दिन पतित हो जाएगा।

सत्य.—प्राण प्यारी! अब बहुत बातें न समझाओ, ना ही मुझे उपदेश प्यारा लग रहा है। एक बार तो मुझे प्रेम करने दो फिर आदर्श बनने के लिए कोई आज का समय थोड़ा है? बहुत आयु पड़ी है, आदर्श बनकर दिखायेंगे तथा ईश कृपा से पिता जी की आज्ञा का पालन अवश्य करेंगे। सौभाग्य से

आप जैसी योग्य देवी जब मुझे मिली है तो फिर आदर्श बनना कौन–सा कठिन काम है?

सन्तोष–मेरे भगवान् आज की पहली रात का गिरा हुआ गृहस्थ कभी आदर्श नहीं बन सकता। यही आज की कड़ी परीक्षा पास करनी है।

उधर सत्यव्रत कामातुर था इधर उसकी दाल नहीं गलती थी। नाराज हो गया और धमकी दी कि यदि तुम मेरा कहना नहीं मानती तो मैं तुम्हारा बहिष्कार (बाईकाट) कर दूंगा–आप से न बोलने की प्रतिज्ञा करूंगा। सन्तोष कुमारी बड़ी घबराई और कहा–जैसी आप की आज्ञा! उठी और पति के पलंग पर जा बैठी और कहने लगी–भगवान् यह जो स्त्रियों को खून आता है, यह सख्त गर्म और रोग उत्पादक मल होता है। ऐसी अवस्था में समागम करने से पुरुष के जननेन्द्रिय में दोष आ जाता है। जिससें पुरुष भीषण व्याधि (सोजाक आदि) से ग्रस्त हो जाता है। इससे आपका अपयश होगा। आप लज्जावश किसी को मुख भी नहीं दिखा सकोगे। लो जो आज्ञा हो, मैं तो दासी हूं। आप कुलीन हैं। आपके पिता का नाम बहुत ऊंचा है। जब आपको हस्पताल या वैद्य के पास जाना पड़ जाएगा तो वे आपको लज्जित करेंगे। इन बातों से सत्यव्रत डर गया और मारे डर के उसकी कामचेष्टा हट गई। प्रातः उठा। हवन करने के उपरान्त पिता से एकान्त में पूछ बैठा कि, स्त्रियों का मासिक धर्म क्या वस्तु है? पिता जी तो जानते थे। सन्तोष कुमारी के यज्ञ में सम्मिलित

न होने से समझ भी गए थे। अब उन्हें यह चिन्ता हुई कि, सत्यव्रत सरल आदमी है—जिसे कि मासिकधर्म का भी पता नहीं। कहीं इसने भूल न कर दी हो। स्त्रियां बिचारी तो अबला होती हैं, पुरुष के सामने साहस नहीं दिखा सकतीं।

ज्ञान—क्या तुम नहीं जानते?

सत्य.—नहीं पिता जी! मुझे क्या पता? आपने जितनी भी बातें बतलाईं। इसका तो वर्णन कभी भी नहीं किया। मुझे कहां से विदित होता।

ज्ञान.—ओ हो! सत्यव्रत! तुम तो बिल्कुल सीधे—साधे और भोले आदमी हो। अच्छा हुआ मुझ से ही पूछ लिया। यदि किसी और से पूछते तो वह तुझे मूर्ख ही ठहराता। इन दिनों में स्त्री का संग उसका छूना, उसके हाथ से कोई वस्तु खानी, पीनी सब निषिद्ध है। इसीलिये तो वह यज्ञ में सम्मिलित नंहीं होती। इन दिनों में इनका होम न करना भी क्षन्तव्य है। स्त्री—पुरुष को इन दिनों में सदा पृथक्—पृथक् रहना चाहिए। नाना प्रकार की व्याधियां संग करने से लग जाती हैं। ध्यान रखना, बचे रहना........

सत्यव्रत सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ कि ईश्वर का धन्यवाद है। मेरी स्त्री बड़ी बुद्धिमती निकली। उसने बुद्धिमत्ता से काम लिया, नहीं तो आज मैं रोग और अपयश का पात्र हो जाता।

तीसरे दिन सन्तोष कुमारी को पेट दर्द सा हो गया। माता ने सत्यव्रत से कहा—डाक्टर के पास जाकर दवाई ले

आ। सत्यव्रत और उसके पिता दोनों हस्पताल गये। वहां तो आदमियों की भीड़ थी। ज्ञानप्रकाश प्रतिष्ठित आदमी थे। डाक्टर साहब ने देखा, नमस्ते की, तथा दोनों पिता–पुत्र को कुर्सियां दी। सत्यव्रत देख रहा है कि स्त्रियों और पुरुषों के हाथों में छोटे–छोटे बच्चे हैं। एक बच्चे को डाक्टर के सामने लाया गया। पूछा गया क्या है? कहा गया–जी बहुत रोता है, दिन रात आराम नहीं करता। दूसरा आया उसने कहा–यह बच्चा इधर दूध पीता है, उधर दस्त कर देता है, किसी समय माता का स्तन नहीं छोड़ता। दिन तो गुजर जाता है किन्तु सारी रात चिल्लाता है और नींद नहीं करने देता। तीसरा आया–इस बच्चे को कब्ज है और पाखाना करते समय बहुत जोर लगाता और रोता है। एक और बच्चा आया। इसके पिता ने कहा इसकी आंखें सदा दुःखती रहती हैं। दो दिन आराम आता है तो फिर वैसे ही दुखने लग जाती हैं। सारांश बहुत से बच्चों की दशा सत्यव्रत ने सुनी और आश्चर्य में डूब गया कि यह सन्तान तो नहीं हुई विपत्ति हुई। अस्तु अपना वृत्तान्त सुनाकर औषधि ली और चलते बने। मार्ग में सत्यव्रत ने पूछा–पिता जी इतने लड़के बीमार हैं क्या कारण? पिता–इन सब के माता–पिता का दोष है। पुत्र–क्या दोष?

पिता और भी कई दोष हो सकते हैं प्रायः वही दोष हैं जिनका पूर्ण वर्णन हो चुका है।

पुत्र–यह बात तो नहीं बतलाई।

पिता–बेटा! एक दोष तो स्त्री पुरुष ने गर्भ से पूर्व

किया। दूसरा गर्भ के समय किया। तीसरा गर्भ की अवस्था में किया। चौथा अब भी एक भारी दोष करेंगे, जो सन्तान को निकम्मा कर देंगे। मुझे तो शोक से कहना पड़ता है कि आज कल दुनियां में जिस प्रकार विवाह होते हैं। उनके मूल में धन का लालच काम करता है। किसी उद्देश्य या ऊंचे लक्ष्य को दृष्टि में रख कर आजकल विवाह नहीं किया जाता। आजकल के नौजवानों का प्रेम आँखों में है हृदय में नहीं यह 'शेक्सपियर' का वचन है।

आजकल के नौजवान विवाह करके सारा दिन चरते हैं तथा नवविवाहित स्त्रियों को स्थान–स्थान पर खाने खाने पड़ते हैं। प्रतिदिन का दुष्पाच्य आहार और शुद्ध वायु का सेवन न करना उनको बदहजमी कर देता है। रात को १. बजे खा पी के दूध पिया–सोए और सोते ही नया प्रेम नई जवानी के आवेग को प्रकट कर देता है और गृहस्थ आरम्भ कर देते हैं, अभी खुराक हजम भी नहीं हुई होती। मैंने तुम्हें पूर्व बतलाया था कि कई कामी पुरुष रात में कई–कई बार टक्करें मारते हैं। इससे उनकी पाचन शक्ति शिथिल हो जाती है। ऐसी स्थिति में जब गर्भ टिक जाता है तो वही दोष बच्चों में पैदा कर देता है और अब शिकायत करते हैं कि, बच्चे को दूध नहीं पचता, इधर पीता है, उधर निकाल देता है। फिर जब अन्दर कुछ न रहा छोटा बच्चा हुआ भूख से तंग करना हुआ। वह रोवे, चिल्लावे या ना? इधर स्त्री को जवानी की नींद आ गई। बच्चा रो–रो कर व्याकुल हो रहा

है। अब जब देखेंगे कि दवाई असर नहीं करती तब मुल्ला, भूपे, ज्योतिषी, ब्राह्मण से रक्षा गण्डे–ताबीज मांगेंगे। कई सदके निकालेंगे। कुरीतियां और प्रभु पर अविश्वास बढ़ता जाएगा। किसी बूढ़ी माई से पूछा तो झट उसने सरल उपाय बतला दिया कि रात को दूध में थोड़ी सी अफ्यून बिल्कुल थोड़ी–सी, ध्यान रखना बहुत न पड़ जाए नाम मात्र ही मिला देना। बच्चे को पिला कर सुला देना, बस सारी रात आराम से नींद करेगा। न स्वयं जगेगा, और न तुमको जगाएगा। बस यह सरल प्रकार मिला। अफ्यून मंगवाई–एक पैसे की कई दिन काम देगी। न रकम खर्च करनी पड़ी, न पीर फकीर को पूछना पड़ा और न हकीम डाक्टर की पराधीनता रही। घर में बूढ़ी माई ने काम बना दिया। बस, बच्चे को अफ्यून का नशा चढ़ गया। सारी रात आराम से कट गई। अब माता–पिता प्रसन्न हैं। इससे उनकी नींद और विश्राम में भी विघ्न न पड़ा। प्रतिदिन की बच्चे की घुट्टी बन गई। बच्चा बढ़ता गया और मस्तिष्क से घटता और सूखता गया। ज्यों–ज्यों बड़ा हुआ बच्चा आलसी, डरपोक और मन्दबुद्धि होता गया। अब बच्चा जवान हो गया, तो बात को समझ नहीं सकता। किसी काम में रुचि नहीं। अब कहते हैं कि कैसा मूर्ख नालायक और प्रमादी लड़का है। ऊंट जैसा बड़ा हो गया और पेशाब करना नहीं सीखा। अपने दोष को तो याद नहीं करते और उस बिचारे की तो रोज मुसीबत आई रहती है। ऐसे बच्चे क्रोधी लड़ाके, थोड़ी–सी बातों में बिगड़

पढ़ने वाले, बेसमझ तथा सरल स्वभाव होते हैं। जितनी देर तक जितनी अफ्यून उनके दिमाग में पहुंच गई उतने ही दर्जे तक वह—रोगी तथा मूर्ख बन गये।

सत्य.—तो इसके लिए क्या करना चाहिए?

ज्ञान.—बस, आरम्भ में बड़ी सावधानता से गृहस्थ करना चाहिए। पवित्र संकल्प से गृहस्थ किया जावे तो कोई दोष नहीं आता। सम्पूर्ण नियम तुम्हें बता दिये हैं, साथ ही तुम्हारी स्त्री भी बहुत विदुषी देवी है। वह शरीर चिकित्सा को जानने वाली है। मेरे विचार में अब भी यह पेट की पीड़ा जो तुम्हारी स्त्री को तीसरे दिन हुई है, तुम्हारे ही अज्ञान का फल होगा। यदि उसे बीमारी होती तो पहले दिन से ही साथ—साथ होती, परन्तु दो दिन तो हुआ ही कुछ नहीं।

लो, मैं तुम को सुनाऊं, स्त्री की पदवी क्या है। एक डिप्टी कमिश्नर साहिब कचंहरी में माल के मुकद्दमें सुनता है। सब उसे कलेक्टर कहते हैं। जब फौजदारी सुनता है, तब डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट कहते हैं। यदि दीवानी भी वह कभी सुने तो उसे जज कहेंगे और जब वह प्रबन्ध का कार्य करता है तब वह डिप्टी कमिश्नर के नाम से याद किया जाता है। ठीक इसी प्रकार स्त्री को जन्म भर और चौबीसों घण्टे स्त्री ही कहो परन्तु जब धर्म कार्य में तुम्हारा साथ दे तब धर्मपत्नी है। जब घर का काम—काज सम्भाले तो गृहपत्नी है, जब और महिलाओं में बैठे तो देवी या नारी है। जब गर्भाधान करना हो तब उसे स्त्री का रूप समझो। स्त्री वह है जो गर्भ

को धारण करने वाली हो—वह सम्पूर्ण संसार के लिए हितकारी हो। उस से जो सन्तान हो वह पवित्र तथा सरल हृदय हो (बिचारे सत्यव्रत के प्राण खुश्क हो गये। उसे अपने दोष का स्मरण हो आया। परमात्मा का धन्यवाद किया कि उनकी रक्षा हो गई।)

इतने में दोनों घर पहुंच गये। पिता जी फिर बोले कि 'कई बच्चों को तुमने देखा होगा—रूठ जाते हैं जब उनके माता—पिता या भाई उन्हें गुदगुदी करते हैं जिससे वे हंस पड़ते हैं और मान जाते हैं। और कई बच्चे ऐसे कुटिल होते हैं कि यदि उन्हें गुदगुदी करो तो भी बिगड़ते हैं तथा कोई चीज दें अथवा प्यार करें तो ऊपर से लात मारते हैं। उनका कारण भी माता—पिता ही है। कभी स्त्री पति से रूठ गई, दिन भर रूठे ही रहे—रात्रि को जब इकट्ठे हुए तब पुरुष कामातुर हुआ जिससे स्त्री को मंनाने का उपाय भी सोच लिया उसे गुदगुदी करने लगा। यदि स्त्री सरल स्वभाव की हुई अथवा नाराजगी थोड़ी हुई या उसमें भी कामचेष्टा का विचार पैदा हो गया तो हंस पड़ी और मान गई। उस समय के गृहस्थ से जो गर्भ ठहर गया, उससे जो औलाद पैदा होगी उस पर भी ऐसे संस्कार होंगे। या कभी स्त्री गर्भवती हो उस स्थिति में उसके साथ ऐसा व्यवहार किया जाये तब भी बच्चे पर ऐसे संस्कार पड़ेंगे। और यदि स्त्री कुटिल स्वभाव की हो तो पुरुष ज्यों—ज्यों गुदगुदी करता है वह उल्टा बिगड़ती है। यह प्यार करता है, लात मारती है।

परन्तु कामातुर हुआ–हुआ पुरुष बलात्कार समागम कर ही लेता है। ऐसी स्थिति में जो बच्चा पैदा होता है वह रूठने पर गुदगुदी से भी नहीं मनाया जा सकता। कई साहूकारों के बच्चों को युवावस्था में भी इस प्रकार देखा कि काम–काज या व्यवहार में पिता जब उनसे कोई बात करता है तो वे मुंह कुढ़ाकर बात करते हैं। कभी भी हंसकर बात नहीं करते। दूसरों से मीठा बोलेंगे, परन्तु पिता से शुष्क और क्रुद्ध बोलेंगे। यह दोष भी माता के कुटिल स्वभाव का है।

अष्टम–सोपान

चार दिन व्यतीत हो गये सन्तोषकुमारी शुद्ध पवित्र हुई। स्नान किया। भोजनशाला में बैठी। भोजन समाप्त किया तो उसकी माता की ओर से एक आदमी उसे लिवा लेने को आया। अब दोनों स्त्री–पुरुषों की तैयारी हुई, सायंकाल दयावन्ती के गाँव में जा पहुंचे। रात्रि के समय दयावन्ती ने यथाशक्ति उनकी सेवा की और उन्हें रहने के लिए पृथक् कमरा दे दिया। अब सत्यव्रत एकान्त में था कोई लम्बा परिवार भी न था। सास अपने किसी कमरे में अकेली पड़ी थीं। रात्रि के समय अब जब स्त्री–पुरुष पलंग पर लेटे तब सत्यव्रत के मन में सन्तोषकुमारी की बुद्धि का सिक्का बैठ चुका था। अतएव अब वह प्रेम तो करता परन्तु अपनी इच्छा प्रकट नहीं करता। बातें करते–करते समय बहुत व्यतीत हो गया। प्रेम की बातें और जवानी का जोर भी था। सत्यव्रत ने कहा–आज गर्भाधान करें।

सन्तोष.—भगवन्, किस लिए जरूरत पड़ गई?

सत्य.—किस लिए क्या? गृहस्थों का धर्म ही यही है।

सन्तोष.—महाराज! पहले उद्देश्य निश्चित कीजिए क्योंकि गर्भाधान तो सन्तान के लिए होता है। किस प्रकार की सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा है? और क्यों उत्पन्न करना चाहते हैं? वह सन्तान क्या–क्या काम करेगी?

सत्य.—बस यही, परोपकारी धर्मात्मा हो सबका उपकार करे और जीवन उत्तम व्यतीत करे।

सन्तोष—स्वामिन्! यह तो आपने सर्वसाधारण की बात कही। अपना विशेष उद्देश्य तो कोई नहीं बताया!

सत्य.—इसका क्या अर्थ है?

सन्तोष—जब आप अपना उद्देश्य निश्चित करेंगे, वैसा हम दोनों पहिले अपने आपको बनायेंगे, जैसा सांचा होगा वैसा खिलौनां निकलेगा और आप यह भी आदेश कीजिए। क्या बालक उत्पन्न करना चाहते हो या कन्या?

सत्य.—प्रत्येक मनुष्य इच्छा तो पुत्र की करता है। मैं भी यही इच्छा करूंगा।

सन्तोष.—तो आज मुझे पांचवां दिन है। आज का गर्भाधान तो कन्या के लिए हो सकता है, पुत्र के लिए नहीं, और कल अष्टमी है। अष्टमी के दिन गर्भाधान करना शास्त्रों में निषिद्ध है। अष्टमी के गर्भ का बच्चा निर्बल तथा रोगी होता है। मनुष्य यदि शरीर से निर्बल होगा तो जूतियां खाएगा, मन से निर्बल होगा तो कोई धर्म कार्य नहीं कर सकेगा, आत्मा से

निर्बल होगा तो आवागमन के कारागार से मुक्त न हो सकेगा। परसों तो हम वापिस घर पहुंच जायेंगे। सत्यव्रत बड़ा विवश हुआ—परन्तु पहिले अपराध से ही लज्जित था। मन से तो नहीं, परन्तु विवशता से दो और भी दिन गुजार दिये।

तीसरा दिन आया, बहुत प्रसन्न हुआ। आदमी लेने के लिए आया और दोनों वापिस घर चले गये। सत्यव्रत रात के आने की घड़ियां गिन रहा है। रात आ पहुंची, और ईश—कृपा से अपना मनोरथ सिद्ध करने के लिए समय भी आ गया। रात के १. बजे हैं। दोनों स्त्री—पुरुष प्रेम पूर्वक पलंग पर बैठे हुए हैं। सत्यव्रत अपनी कामना की पूर्ति के लिए लालसा प्रकट करता है, तब सन्तोषकुमारी हाथ जोड़कर नम्र प्रार्थना करती है—भगवन्! यदि निरुद्देश्य गृहस्थ करना हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं आपकी हूं परन्तु फिर मुझे उपालम्भ (गिला) न दिलाना। आप के पिता जी की इच्छा पूरी न हुई तो......

सत्य.—क्यों आज क्या बात है?

सन्तोष.—मैं पूछती हूं, आप अपने ऊपर निर्भर हैं या अपने माता—पिता पर?

सत्य.—अभी तक तो मैं अपने माता—पिता पर निर्भर हूं अपना तो कोई रोज़गार बना ही नहीं।

सन्तोष.—आप तो अपने माता—पिता पर और मैं आप पर निर्भर हूं। और जब बच्चा हो गया तो वह होगा मुझ पर।

तो संतान पराधीन से पराधीन पर निर्भर होगी। वह स्वतन्त्र कैसे होगी। आपको पकौड़े लेने पड़े तो पैसे पिता से मांगो और मैं तो आपसे मांगूंगी ही कैसे? और जब बच्चा मांगेगा तो मैं क्या दे सकूंगी?

"नंगी नहाएगी क्या और निचोड़ेगी क्या"

मेरे इष्ट देव! मेरे गुरु देव! मेरे स्वामी! पूजा के योग्य पतिदेव! एक बार तो यत्न करें। आप अपने पिता की और मैं अपनी माता की आज्ञा का पालन करके सच्चे सपूत कहला सकें। मनुष्य का उद्देश्य इन्द्रियों का आनन्द लेने का नहीं। यह तो फोग है। जैसे गन्ने का रस खूब चूस–चूस कर गन्ना बेकार बना कर फेंक दिया जाता है तो उस निरर्थक फोग पर हजारों चीटियां, मकोड़े, मच्छर और मक्खियां रस लेने के लिए आ बैठते हैं, ठीक इसी प्रकार यह विषय भोग का आनन्द तो गन्ने के फोग के आनन्द के समांन है और वह तो जन्तुओं के लिए होता है। हम तो मनुष्य हैं। आप ग्रेजुएट हैं। मैं तो निकम्मी हूं फिर भी माता ने कुछ पढ़ा दिया है। मेरी माता और आपके पिता दोनों ही प्रसिद्ध धर्मात्मा हैं। शेर–शेरनी के मिलने से अवश्य शेर उत्पन्न होता है। यदि हम दोनों दोषी हुए और हमारे संगम से कोई उच्च गुणों वाली सन्तान उत्पन्न न हुई तो लोग क्या कहेंगे। इसीलिए तो प्रथम आप अपना धन कमाइये। उस उत्तम धन और अन्न से शुद्ध पवित्र रज और वीर्य बनेंगे। उससे जो संतान उत्पन्न होगी वह शुद्ध और पवित्र होगी। आज कल

विवाह माता–पिता की सम्पत्ति से हो जाता है। विवाह के लिए तो सात नियम हैं जो सप्तपदी, नाम से कहलाते हैं। सर्वप्रथम तो विवाह करने वाले पुरुष के पास अन्न और विज्ञान चाहिए। शास्त्रों ने इसे 'इष' नाम से कहा है, अर्थात् विवाह करने वाले पुरुष के पास भोग की सामग्री तथा भोग उत्पन्न करने की विद्या हो। दूसरे के अन्न को अपना अन्न न माने। दूसरा 'बल' हो जिससे कि उस अन्न, धन की रक्षा कर सके और अपनी वधू की भी रक्षा कर सके।

तीसरा 'उत्तम धन' जिससे गृहस्थ के व्यवहार चला सके। चौथा 'सुख' निरोगता हो। पांचवां सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति तथा उसका पालन–पोषण और रक्षण का सामर्थ्य। छठा ऋतुगामी रह सकने वाला अर्थात् स्त्री से ऋतु–धर्मानुकूल ही गृहस्थ करने वाला हो तथा अपनी इन्द्रियों पर संयम रखने वाला हो, पशु–पक्षियों की तरह मर्यादा का उल्लंघन करने वाला न हो। सातवां स्त्री के साथ सखा अर्थात् मित्र जैसा व्यवहार करने वाला हो।

शास्त्रों की मर्यादा तो बड़ी सुन्दर है परन्तु हम लोगों की भूलों से गृहस्थ मर्यादा बिगड़ गई है। कोई कठिन काम नहीं है। साहस और हृदय चाहिए। आप जानते हैं जिसे 'डिप्टी' बनना हो वह परीक्षा में सबसे प्रथम रहने का प्रयत्न करता है और कितना परिश्रम और त्याग करता है। बस यह ऐसा ही है।

सत्य.—प्रिय! तेरी बातें बड़ी प्यारी लगती हैं। तू तो

विज्ञान की देवी है। जरा यह तो बताओ कि यह 'सप्तपदी' की सात शक्तियां क्या पति के लिए ही हैं या स्त्री के लिए भी? हम दोनों सात पद इकट्ठे पढ़े थे। तुम यह न समझना कि मैं तुम पर कोई आक्रमण वा तर्क कर रहा हूं अपितु मैं अपनी योग्यता के लिए विज्ञान से लाभ उठाना चाहता हूं।

सन्तोष.—अच्छा आप हंसी कर लें। आप ठहरे बी.ए. आप ही ने विवाह के समय, वेदी पर जब मैंने आसन उपस्थित किया था, तो बड़े कड़ककर कहा था—**"वर्षोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्य"।**

अर्थात् प्रकाश करने वाले नक्षत्रों में जिस प्रकार सूर्य सर्वश्रेष्ठ है वैसे ही मैं भी ज्ञान, आचार तथा दूसरे गुणों में सब प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ हूं। मुझ बिचारी ने तो सारी विवाह पद्धति में ऐसा कोई भी दम नहीं भरा।

सत्य.—अच्छा तूने भी हंसी कर ली (दोनों हंस पड़े) अच्छा अब बताओ भी।

सन्तोष.—पुरुष की तो ये सात शक्तियां हैं और स्त्री के सात भूषण (अब तो आपने भी वे भूषण नहीं बना दिए नवीन सभ्यता का ही अनुकरण किया है) परन्तु सुनिए—प्राचीन काल में स्त्रियां सोना, चांदी हीरे जवाहरात के आभूषण यथाशक्ति पहनती थीं। परमात्मा ने स्त्रियों को स्वाभाविक ही सौन्दर्य प्रदान किया है। उन्हें भूषणों की आवश्यकता सौन्दर्य के लिए नहीं थीं। और ना ही भूषण उनका अपना धन समझा जाता था। उनके मानसिक विचारों को ठीक रखने

के लिए नीचे से ऊपर तक भूषण पहना देते थे। विदुषी स्त्री ही घर का, कुल का तथा वंश का भूषण होती है। वह भूषण जहां उनके ब्रह्मचर्य की रक्षा करता है, वहां उदारता तथा प्रसन्नता का भी चिन्ह है। सप्तपदी के सात भूषण निम्नलिखित हैं–

१. पहिला भूषण पायजेब पावों का होता था, और पांवों की अंगुलियों में छल्ले चाँदी के होते थे यह पहिला पद सप्तपदी में 'इष' का है (इषे एक पदी भाव) इष कहते हैं भोग अन्न को। चाँदी से अन्न खरीदा जाता है। चांदी में चन्द्रमा का गुण है और अन्न में भी उसका रस है। अन्न का व्यवहार तथा दान करने के लिए है। चांदी भी व्यवहार और दान के लिए होती है।

२. दूसरा पद है "ऊर्ज" कमर में चाँदी की चलकी बांधी जाती थी। यह बल का चिन्ह था। स्त्री की कमर कसी हुई हो या कमर कस (कटिबद्ध) स्त्री हो, वीर हो।

३. तीसरा पद है "रायः" अर्थात् धन, का स्त्री के हाथों में भूषण कड़े, छल्ले, अंगूठियां होती हैं। जो धन के और दान करने के चिन्ह हैं।

४. चौथा पद मयः अर्थात् सुख का है। गले के भूषण होने के होते थे। मनुष्य के शरीर का सुख गले के स्वास्थ्य पर निर्भर है।

५. पांचवा पद है प्रजा का, नाक का भूषण। प्रजा (सन्तान) ही कुल की नाक है, प्रजा ही प्राण है।

६. छठा पद है ऋतु कान के भूषण। कान भूषणों से भरा हुआ होता था। कान ज्ञान का स्थान है। ऋतु का अर्थ ज्ञान है। स्त्रियां ज्ञान में सोने की तरह भरपूर होती थीं।

७. सातवां पद है सखा, मस्तक के भूषण का। स्त्रियों में प्रेम नम्रता का इतना भाव था कि उनका माथा तेजस्वी भूषण था। अर्थात् तेज का भूषण उनके मस्तक पर चमकता था। जैसे डांवनी बैना माथे का भूषण।

परन्तु आज भूषणों की प्रथा नष्ट हो गई। कुछ धन के अभाव और कुछ व्यवहार के प्यार में लग गये। पुरुष इसे निरर्थक समझने लग गये। अपने स्वार्थ के कारण प्राचीन काल की देवियां जैसे सोने चाँदी से लदी रहती थीं ऐसे वे उदारता और दान के भाव से भरपूर होती थीं। वे सदा प्रसन्न बदन रहती थीं मानो उन्हें कोई चिन्ता या दुःख ही न था। अंब पाजेब भी गया—पांवों की शोभा थी, घर रहने में। परन्तु अब स्वतन्त्र होकर घर के बाहर भी बिहार करती हैं और ऊंची ऐड़ी के बूट पहिने खट—खट करने में ही अपनी शोभा मान रही हैं। कमर की लचक भी नहीं रही, सदा रुग्ण रहती हैं। वीरता के लक्षण तो दूर रहे। रात को घर में अकेले भी नहीं बैठा जाता। हाथ में दान का भाव नहीं रहा। घड़ी ने मोर्चा को चमड़े के पट्टे से कसा हुआ है। बड़े शहरों में ऊपर की मंजिल में रहती हैं। जहां न कुत्ता फटकता है, न कौवा आता है ना चिउंटी। बिचारा भिखारी मांगे तो कहां से। बलिवैश्वदेव की बलि भी बन्द हुई, तब

बलि ने आश्रय ही छोड़ दिया। गले (कण्ठ) सदा हलुवा पूड़ी अचार और भल्ले पकौड़े से बीमार रहते हैं। अब सोने के हार से हार गई और बीमारी गले का हार बन गई। ज्ञान से बिल्कुल शून्य हैं। ज्ञान है तो केवल एक फैशन। इसलिए भूषण भी एक रह गया। वह भी नाम का कांटा। माथे पर बजाय भूषण डांवनी बैना के तेज की त्यौरी चढ़ी रहती है।

सत्यव्रत को बात बड़ी पसन्द आई—बोला अच्छा देवी माता—पिता की आज्ञा का पालन करके ही दिखा देंगे। ईश्वर करें हम अपना जीवन वेद शास्त्रानुकूल बनावें। जिससे हमारा उत्थान और आने वाली संतान का कल्याण हो।

नवम सोपान—परीक्षा

कुछ समय व्यतीत हो गया। एक दिन मध्यान्ह के समय सारा परिवार इकट्ठा बैठा था। ज्ञानप्रकाश जी ने कहा कि प्रातः मैं दिसावर जाने वाला हूं। लगभग एक मास लग जाएगा। मेरी अनुपस्थिति में अब तुम्हारा पहला अवसर होगा, सावधानता से रहना। सब माल असबाब तथा घर बार का ध्यान रखना। जिस—जिस को किसी वस्तु की आवश्यकता हो मैं लौटते हुए लेता आऊंगा। कुछ देर तक सब मौन रहे, कोई न बोला। तब फिर एक—एक करके पूछा—बेटी सन्तोष कुमारी! तेरे लिए क्या—क्या चीजें लाऊं?

सन्तोष.—पिता जी! मुझे तो केवल आपके आशीर्वाद की आवश्यकता है किसी वस्तु की कमी नहीं है।

सत्यव्रत की माता बोल उठी—बिचारी सन्तोष तो सचमुच

ही सन्तोष है। इसने अपने मुंह से तो कुछ कहना नहीं। नई ब्याही आई है। हमारा युग तो बीत गया। आजकल तो युग ही और प्रकार का है। नवविवाहिता या आजकल के जमाने की दूसरी स्त्रियां जब आपस में मिलती होंगी तो उनके विविध प्रकार के बूट–सूट देखकर सन्तोष के मन में लज्जा तो होती होगी अथवा दूसरी स्त्रियों को विचार आता होगा कि इतने बड़े आदमी की वधू है। इसे पहनने को कुछ नहीं देते, कृपण हैं। हमारी निन्दा होती होगी। यही दिन तो खाने पीने के होते हैं फिर जब बाल बच्चे हो गये तब किसको अवसर होता है। सास ससुर का सुख क्या याद करेगी? मेरी तो इच्छा है कि एक ऊंची ऐड़ी वाला बूट और सिल्मे सितारे का सूट सिलवा कर लावें अथवा आजकल के फैशन के अनुकूल विचित्र–विचित्र कपड़े "तेरी मेरी मर्जी" "दिल की प्यास" अथवा आंख का नशा जिनको आजकल की नवविवाहिता पसन्द करती हैं, लेते आवें।

ज्ञानंप्रकाश अपनी स्त्री के मुख से ये बातें सुनकर हैरान हो गया, उस पर सन्नाटा छा गया। इतने में एक छाबड़ी वाला दही, भल्ले, पकौड़ियां, आलू छोले गरम की आवाज देता हुआ गुजरा। सत्यव्रत ने बुलाया कि भल्ले वाले इधर आना हम को दिये जाना ज्ञान प्रकाश जी ने दिल में कह यक न शुद दो शुद मैं तो समझा था कि अब मैं निश्चिन्त हूं। मेरी स्त्री पुरानी है। मेरे विचारानुकूल थी। परन्तु इसे भी लोक लज्जा ने खा लिया और लड़का बी.ए. होता हुआ भी

घर में सब कुछ होते हुए भी छाबड़ी के आलू छोले खाने के लिए तरस रहा है तो यह सद्गृहस्थी कैसे बनेगा—संयम का जीवन तथा स्वास्थ्य कैसे स्थिर रख सकेगा। शोक! अभी तो मुझे बड़ा बन्धन है। जब तक मैं निश्चिन्त न हो जाऊं कि मेरी सन्तान मेरा अनुकरण करने वाली है। घर को छोड़ कर जंगल में जाना सर्वथा व्यर्थ है। पहिले तो घर का सुधार आवश्यक है। विचार करने लगा कि अब छाबड़ी वाला भी आ गया है, इसको उठाता हूं तो यह निर्धन है इसकी तो आजीविका ही यही है। मेरे उठा देने से इसको दुःख पहुंचेगा तथा इसको उठा देने से इसका प्रतिकार भी नहीं होगा यह सोचकर चुप हो गया। सत्यव्रत ने अपने लिए पकौड़ियाँ आलू छोले लिए और पिता जी से पूछने लगा, 'आपके लिए भी ले लूं। बड़े स्वादिष्ट होते हैं। पिता था तो दुःखी परन्तु बुद्धिमान था। हंस पड़ा और कहा 'नहीं बेटा! नहीं'। मां से पूछा मां ने कहा—और ना लो मैं तुम्हारे में से ही थोड़ा चख देखूंगी—सन्तोष से पूछ ले यदि खावे तो और ले ले। सन्तोष ने पूछने से पहिले ही सिर हिला दिया। छाबड़ी वाला चलता बना। अब सत्यव्रत ने माता के सामने दोना रख कर कहा आप जितना चाहें ले लें। फिर पिता के सामने रखकर कहा कि पिता जी आप भी थोड़ा—सा खाकर देखिये कैसे स्वादिष्ट हैं। अब ज्ञानप्रकाश जी बोले—बेटा! आज मेरे लिए बड़ा सौभाग्य का दिन है कि मुझे अपनी भूल का ज्ञान हुआ। नहीं तो पता नहीं जैसे मेरे विचार थे कि अब मैं निश्चित हो गया

हूं। मेरा उत्तरदायित्व समाप्त हो चुका है। तुम ग्रेजुएट हो। सन्तोष बड़ी बुद्धिमती है—और तुम्हारी माता भी अनुभव वाली है। तुम अपनी माता की देखभाल में गृहस्थ जीवन अच्छा व्यतीत कर सकोगे। सब प्रकार का आवश्यक उपदेश तुमको दिया जा चुका है। मैं एकान्तवास के लिए कहीं जंगल चला जाऊं और यह एक मास भी किसी कार्य के लिए नहीं जाना था केवल अपनी और तुम्हारी परीक्षा के लिए समुद्र के किनारे रहने के लिए जा रहा था। परन्तु आज मैंने अपने जाने का विचार त्याग दिया है।

सत्य.—क्यों पिता जी! इधर तो आपने कहा कि सौभाग्य का दिन चढ़ा है और फिर जाना त्याग दिया है। यह क्या बात है?

ज्ञान.—बेटा कुछ न पूछो। मुझे तो नये सिरे से अब तुम्हारे लिए चक्की पींसनी पड़ गई। न तुम पर भरोसा है न तुम्हारी माता पर है। हां सन्तोष कुमारी पर विश्वास अवश्य है। सो यह बिचारी तो तुम दोनों के अधीन हुई। वह अकेली क्या कर सकेगी यह सुनकर सब हैरान हो गये और पूछने लगे।

ज्ञान.—बेटा तुम को पता है कि छाबड़ी वाले की चीजें कितनी अशुद्ध होती हैं?

सत्य.—अशुद्ध तो नहीं होती। हम सब कालेज वाले और स्कूल के लड़के तथा दूसरे शहर के लोग भी इन्हीं से लेकर खाते हैं। आज नहीं हमेशा से यही रीति चली आती है। स्वयं

माता–पिता छोटे बच्चों को ले देते हैं और जब कोई अतिथि असमय पर आ जाता है तो उसके लिए भी सब कोई छाबड़ी वालों से मंगा कर काम चलाते हैं।

ज्ञान.–पुत्र! जो–जो बातें पूर्व में मैंने तुम्हें बताई तथा समझाईं क्या उनका रिवाज नहीं था।

सत्य.–क्यों नहीं पिता जी! बहुत रिवाज था।

ज्ञान.–तो फिर जैसे वह रिवाज गलत वैसे यह भी रिवाज गलत है। बच्चों के लिए यह चीजें बहुत हानिकारक होती हैं। बच्चे चटोरे बन जाते हैं। दिन भर उन पर मक्खियां भिनभिनाती हैं और दही भल्ले में पड़ जाती हैं। कभी छाबड़ी वाले की दृष्टि पड़ गई तो उसे निकाल डाला नहीं तो बीच में ही घुल गई। प्रातः के बनाए रात तक खपाते हैं। बासी और खट्टे हो जाते हैं। तेल की चीज है। फिर लाल मिर्च खूब भर देते हैं और नमक भी तो वही डालते हैं जो बिल्कुल रद्दी होता है। दही खालिस नहीं होता, न ही वे इतनी दही खरीद सकते हैं। लस्सी को छन कर पनीर बनाते हैं और फिर उसी पनीर में भल्ले पकौड़ियां डालते हैं। लस्सी का गुण भी नष्ट हो जाता है फोक रह जाता है, जिससे पेट के अन्दर अन्तड़ियों में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, पाचन की शक्ति बिगड़ जाती है तथा वह निर्बल हो जाती है। जिगर में खराबी, नजला, जुकाम, तपेदिक, दमा और खांसी का भी भय रहता है। स्वप्नदोष करना इन भल्ले पकोड़ी देवताओं के लिए तो साधारण–सी बात है। शरीर के

रोगी होने से आयु घट जाती है। लोग इसे साधारण बात समझते हैं, परन्तु इस पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाए तो पता लगेगा कि यह शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक बलों को निर्बल करने वाली चीजें हैं। ना ही केवल भल्ले, पकोड़ी अपितु केवल जिव्हा स्वाद के लिए बर्फ, लैमुनेड का सारा दिन प्रयोग करने वाले तथा ठण्डी कुल्फियां आदि सब पाचन शक्ति के शत्रु हैं। यदि आप को इच्छा ही है तो घर में पवित्रता से बनवा सकते हैं। सारा परिवार भी खावे और बल भी आवे। अब तुम्हारी माता ने तो मक्खियों का फालूदा चख भी लिया। पूछो माता से क्या स्वादिष्ट भी था?

माता ने मक्खियों का नाम सुना तो ग्लानि आ गई और थूकने लग पड़ी। सत्यव्रत ने भी हाथ में लिया हुआ पत्ता झट फैंक दिया। और कहा पिता जी भविष्य में मैं बाजार की चीजें कभी नहीं खाऊंगा।

पिता—नहीं बेटा ऐसी प्रतिज्ञा न करो। सब चीजें बाजार से ही खरीदी जाती हैं। हां स्वास्थ्य को हानि पहुंचाने वाली चीजें न खाया करो। अच्छा सन्तोष बेटी तुम बताओ तुम्हारी सास ने तुम्हारी बड़े जोर से सिफारिश की है ये सब चीजें लेता आऊं।

सन्तोष.—पिता जी ऊंची ऐड़ी का बूट तो भूलकर न लाना। मेरी माता बाल्यावस्था में पाठशाला की लड़कियों और अध्यापिकाओं को दो बातें समझाती थीं कि स्त्री की मत खुरी में होती है। इसीलिए खुरी (एड़ी) खुली रहनी चाहिए ऐसी

जूती या स्लीपर पहनना चाहिए जिससे खुरी नंगी रहे और दूसरी बात कहती थीं कि सिर में स्त्री को टेढ़ा चीर नहीं निकालना चाहिए। वह पाठशाला में कंघी रखती थीं और जो लड़की टेढ़ा चीर निकाल कर आती थी मेरी माता झट अपने हाथ से बिगाड़ कर उसका चीर निकाल देती थीं। अध्यापिकाओं को भी इसी प्रकार की कठिन आज्ञा दी हुई थी। मुझे इन बातों का भावार्थ तो मालूम नहीं कि क्यों कहती थीं परन्तु मैं अपनी माता में विश्वास रखती हूं कि वह सदाचार की पवित्र देवी हैं। उसका जीवन तपोमय रहा है। इसलिए मैं ऐसी चीज नहीं चाहती। हां वस्त्र तो जो अपनी इच्छानुसार आप देंगे वही पहनूंगी! इन कपड़ों का जिनका नाम सास जी ने लिया है, मुझे भी ध्यान नहीं। हां, इनके नाम तो मेरे चित्त को आकर्षित करने वाले नहीं।

ज्ञानप्रकाश—बेटी तू भी पवित्र देवी है। सुनो! मैं तुम्हें सुनाऊं। स्त्रियों को और ब्रह्मचारियों को सदा नंगी खुरी (एडी) रखनी चाहिए। इससे काम वासना का वेग नहीं होता। टेढ़े चीर में रजोगुणी भाव होते हैं। स्त्रियों को सदा नाक के सीध ब्रह्मरन्ध्र तक सीधी मांग निकालनी चाहिए। यही सदाचार का पवित्र लक्षण है। माता सीता, गार्गी, द्रोपदी, पद्मिनी आदि के चित्र देखो तो उनकी सीधी मांग निकली पाओगे। यह वही पवित्र स्थान है कि बच्चे जब उत्पन्न होते हैं तो उन का यही स्थान सिर के मध्य में ही बहुत नर्म और दो हिस्सों में विभक्त मालूम होता है। यही माताओं का संस्कार है। जब

तक यह मांग बच्चे के खुली रहती है, तब तक उसे अपना पिछला जन्म स्मरण रहता है। स्त्रियों को यह मांग केवल बालों के शृंगार और सौन्दर्य के लिये नहीं निकालनी चाहिये, अपितु उन्हें यह धारणा रखनी चाहिए कि हमारी सन्तान नाक की सीध–संसार में सीधे मार्ग पर चलने वाली हो। वह कौन–सा मार्ग है? वह मार्गशीर्ष है। बुद्धि मस्तिष्क का मार्ग, जो ऐसा सीधा है कि ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचता है अर्थात् ब्रह्म के दर्शन कराने के लिये ऐसा सीधा सुपथ दिमाग चलने का बनाया जावे। इस सीधे चीर का स्थान सन्धि का स्थान है जहां पर सब ज्ञानेन्द्रियां मिलती हैं। जो स्त्रियां टेढ़ा चीर निकालती हैं उनका भाव सतोगुणी नहीं रह सकता। उन में सुख और सौन्दर्य का विचार समाया रहता है और फिर यह टेढ़ा चीर क्लिप का मोहताज रहता है। बार–बार बाल बिखर जाते हैं और भद्दे लगते हैं। बिलायंत की व्यसनी लेडियों का अब हमारा देश भी अनुकरण करने लग पड़ा है। परमात्मा ही रक्षा करे। बिलायत की तो बहुत–सी लेडियां अब इसे अवगुण समझने लगी हैं। वे अब सीधा चीर निकाल रही हैं। परन्तु हमारे देश की देवियां उल्टे चीर पर जोर दे रही हैं। स्त्री की प्रत्येक क्रिया का प्रभाव बच्चों के हृदय और मस्तिष्क पर पड़ता है। यदि कई पीढ़ियों तक यही हाल रहा तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऐसी माताओं की सन्तान जो टेढ़े चीर निकालती हैं बुद्धिहीन पैदा होंगी तथा परमात्मा से बहुत दूर–दूर रहेंगी।

अब वस्त्रों का हाल सुनो। विदेश के लोग बड़ी उन्नति कर रहे हैं। वे इतने बुद्धिमान् हैं, कि हमको पराधीन देशवासी समझ कर हमारी आर्थिक दशा को तो पद–दलित कर ही रहे थे, परन्तु अब वे हमारे आचरण और सदाचार पर ही हाथ फेर कर सफाई करना चाहते हैं। कहीं तो सिनेमा के द्वारा स्त्रियों तथा नौजवानों, लड़के, लड़कियों को आचरण हीन बना देते हैं। और कहीं ग्रामोफोन के रिकार्ड हमें आलसी और सुखार्थी बना रहे हैं। कहीं साईकिलों ने नपुंसक बना दिया और कहीं अब कपड़ों की तड़क–भड़क की चमक आग लगा रही है। भला, जो स्त्री एक बजाज की दुकान पर जा कर कहती है कि मुझे "तेरी मेरी मरजी" "दिल की प्यास" "आँख का नशा" या "हिल जुल" दो, तो क्या इन शब्दों के प्रयोग में उसका पतिव्रत धर्म सुरक्षित रहा या पतित हो गया? ये शब्द ही ऐसे अश्लील और भ्रष्ट हैं कि जिनके उच्चारण से ही लज्जा शर्म और शील की सफाई हो जाती है। केवल इससे ही अनेक पुरुषों और स्त्रियों के आचरण बिगड़ गये। कहां तो हमारी प्राचीन देवियों का गौरव! जो किसी पर पुरुष का स्पर्श भी पाप समझती थीं और कहां अब कि स्त्रियां और नौजवान लड़कियां फैशन के कपड़े बनाने के लिए दर्जियों को अपने गले और छाती का माप देती हैं। कितनी लज्जाजनक बात है। कौन कह सकता है कि इससे हमारे सदाचार की रक्षा हो सकेगी? इन झड़क–भड़क के कपड़ों को पहिन कर जब स्त्रियां कहीं

जाती हैं तो दुराचारी लोग उनको झांक–झांक कर देखते हैं। यदि सब खद्दर के साधारण कपड़े पहिनने लग जायें तो किसी की अपवित्र दृष्टि ही न पड़ सके। इसीलिए तो वेद भगवान् में मन्त्र आया है कि जब विवाह होता है तो पति की ओर से वधू को कपड़े भेंट किये जाते हैं तब पति कहता है कि "मेरे देश की देवियों ने स्वयं सूत कात कर बड़े प्रेम से तुम्हारे लिए यह बुना है। परमात्मा करे यह वस्त्र तुम्हें दीर्घ जीवन तक प्राप्त रहें।" हमारे देश की मातायें जब चरखा चलाती थीं तो उसके तार को देश और प्रभु गीत के द्वारा प्रेम से अभिमन्त्रित (मिस्मराईज्ड) कर देती थीं, जिनके पहिनने से मनुष्य का हृदय पवित्र, सरल और प्रेममय बना रहता था। विदेशियों ने अपने विज्ञापन के बल से हमारे देश की सत्यता और वास्तविकता पर अपनी रंगीली चमकाहट से ऐसा जादू डाला कि बच्चे और युवक स्त्रियां और पुरुष कौड़ी का दातून छोड़कर कीमती टूथ पाउडर मंगवाने लग पड़े। पाई की गाचनी मिट्टी को त्याग कर चार आठ आने के साबुन और स्वास्थ्यप्रद पैसे के तेल के बजाय आठ आने का रुपया का लिवण्डर और क्रीम व्यवहृत करने (बर्तने) लग पड़े। आंखों को अन्धा करने वाली मछली के छिलके की बनी हुई ऐनकें बच्चे भी लगाने लग पड़े। सारी चीजें मंहगी बना दीं परन्तु हां एक चीज उन्होंने सस्ती भी कर दी वह है "चाय"। दूध–मलाई जैसे अमृत तथा पौष्टिक पदार्थों का त्याग करा कर चाय पिलाने का व्यसनी बना दिया। अब तो

लोग इसमें बड़प्पन मानने लग पड़े और सस्ती भी कैसी? हमारे यहां तो एक आने का सेर आध सेर दूध आ जाए और इनकी चाय की एक प्याली एक आना में बिके। कहां तक गिनाऊं सन्तोष प्यारी! हमारी देवियाँ चक्की पीसकर जहां परिवार को श्रद्धापूर्वक प्रेममय भोजन खिलाती थीं, वह उनकी सबसे बड़ी सेवा समझी जाती थी। साधु महात्मा, गुरुजनों, अपने प्यारे पति, सास और ससुर तथा परिवार के दूसरे जनों को श्रम से पीस—पकाकर ही भेंट दिया करती थीं। आज मशीनों ने इन्हें निकम्मा निर्बल और निर्जीव बना दिया।

भला स्त्री के पास कौन—से धन की कमाई है जिससे वह किसी की सेवा कर सकती है। केवल यही तो उनके हाथों की पवित्र कमाई समझी जाती थी कि चक्की पीसें, चरखा चलावें, छाछ रिड़कें, चौका तथा चूल्हा अपनावें। आज भंगी और चमार, नीच जातियों के लोगं मशीनों पर आटा पीस देते हैं। कैसे हमारे देश के बच्चों में शुद्ध भाव पैदा हो सकते हैं? तुम भी शायद कहती होगी कि चक्की के लिए मुझे ही संकेत कर रहे हैं। तुम्हारा समझना ठीक होगा। मैं चाहता हूं कि आर्य सभ्यता को समझने की आवश्यकता है। भला माता—पिता के समय कन्या दान से पूर्व गोदान क्यों करते हैं? इसलिए तो करते हैं कि स्त्री का धर्म अपने हाथों से गौ सेवा करना है। गौ ही वास्तविक धन है। गृहस्थी के घर की सम्पत्ति व बरकत है।

पाश्चात्य लोग तो भोग—विलास के मार्ग लेने में प्रसन्न

हैं परन्तु आर्य सभ्यता तो समय और सरलता का पथ बतलाती है जिससे कल्याण होता है।

सत्यव्रत–पिताजी! आप निश्चिन्त रहें। हम दोनों ने अपने जीवन में संयम और ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा की है। ईश्वर ने चाहा तो आप देख कर प्रसन्न होंगे।

पिता–बेटे सत्यव्रत! यह सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ फिर भी मैं चिन्तित रहता हूं क्योंकि तुम बड़े सरल प्रकृति हो। अपने गृहस्थ सुधार के लिए स्वयं भी सोचा करो। मुझे भय रहता है। यौवन पशुत्व होता है पग–पग पर गिरावट है। सम्भल–सम्भल कर पांव धरने वाला उन्नत शिखर पर पहुंच सकता है। लो पिता हो कर भी तुम को स्पष्ट बातें समझानी पड़ती हैं। ध्यान दोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा। संयम का जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक है कि स्त्री–पुरुष सदा पृथक्–पृथक् सोया करें। इकट्ठे सोने में चाहें पुरुष गृहस्थ से घृणा भी करता रहे तो भी बिजली की दो विपरीत (धन विद्युत और अधन विद्युत् "पॉजिटिव और नेगेटिव) शक्तियों के मिलने के समान आभ्यन्तरिक शक्ति का ह्रास होता रहता है। एक दूसरे के अन्दर श्वास के आवागमन से नानाविध रोग उत्पन्न होते हैं और गुप्त रीति से काम वासना के परमाणु जाग्रत होते रहते हैं। जब अपने जीवन को खान–पान तथा आच्छादन आदि में सरल और नियमित बनाये रक्खोगे तो आने वाली सन्तान की निगरानी करने से बच जाओगे। तुम अंग्रेजी पढ़े हो समाचार पत्रों में पढ़ते हो

अंग्रेजी भोग विलास के समर्थकों से भी मिलने—जुलने का अवसर मिलता रहेगा। ध्यान रखना मैं तुम्हें एकान्त में समझाता रहता हूं। कहते हुए तो संकोच मुझे होता है, पर क्या करूं। तुम बहुत सरल हो, इसीलिए स्पष्ट—स्पष्ट बात समझानी पड़ती है। हमारे देश के सदाचार को नष्ट भ्रष्ट करने के लिए विदेश के व्यसन—प्रिय लोगों ने यह प्रलोभन देकर कि सन्तान ही उत्पन्न न की जाए, न सन्तान का बोझ पड़े न स्त्री को गर्भ का कष्ट हो। न वह निर्बल होने पाए तथा हमारे विषय भोग में भी रुकावट न आए तो उन्होंने फ्रेंचलैदर (फ्रेंच लेदर पेसरी) बना दिए हैं। आगे नहीं समझाना चाहता। दुःख और लज्जा के मारे मेरी वाणी शिथिल होती जा रही है। तुम इसी से समझ लेना। बहुत सावधान रहना। संयम तथा ब्रह्मचर्य इन्द्रियों को वशीभूत करने का नाम है।

एक तो युवा और युवतियां हस्तमैथुन के रोग में ही ग्रस्त थीं। अब ये नये प्रकार का रोग विदेशी विज्ञानवेत्ताओं ने खड़ा कर दिया है। इससे तो युवा हो या वृद्ध, कुमार हो या विवाहित कुमारी हो या विधवा ऊपर से तो बगुले की तरह भक्त बने रहते हैं। बस! इतना ध्यान रखना कि तुम्हारी सरलता से कोई अनुचित लाभ न उठाने पाए सरलता के कारण तुम किसी की धूर्तता में न आना।

परिशिष्ट

गृहस्थाश्रम–प्रवेशिका

कामवासनाधीन गृहस्थ

गृहस्थी जो कामवासनाओं के अधीन हो चुका है कभी ऐसा होता है कि मलेरिया (मौसमी बुखार) की ऋतु में पुरुष को ज्वर चढ़ जावे और स्त्री उसे दबाने बैठे तो पुरुष कामाग्नि उत्तेजित हो जाने पर वह मूर्खता से कामांध हुआ बीमारी में ही स्त्री से समागम कर लेता है। कभी बुखार उतरा हुआ समझ कर समागम कर लेता है और ऐसे पुरुष को यदि इस समागम के बाद ज्वर जावे तो फिर वह बुखार उस का राजयक्ष्मा (तपेदिक) बन जाता है क्योंकि नियम है कि पानी शीघ्र गर्म होता है और जल्दी ठण्डा हो जाता है। परन्तु तेल और घी गर्म भी देर से होते हैं और ठण्डे भी विलम्ब से ही होते हैं। मलेरिया के रोगी का ज्वर जब उतरता है तो रक्त से, जो जल के समान है, गर्मी निकल जाती है मगर वीर्य से जो सातवीं धातु है और तेल और घी के तुल्य है गर्मी बहुत देर से निकलती है और वह पुरुष जिसके वीर्य में अभी गर्मी है समझो कि उसका ताप अभी पूरा नहीं उतरा। ऐसी अवस्था में समागम करने से ज्यादा जोश हो जाता है और फिर ज्वर आने पर उसे क्षय रोग हो जाता है।

यदि ऐसी अवस्था में गर्भ स्थिति हो जाए तो जो बच्चा उत्पन्न होगा वह भी इसी नामुराद घातक रोग से सुरक्षित न

होगा। कई अवस्थाओं में बच्चों के अल्प आयु में मृत्यु का कारण इस समय का समागम है जब कि मनुष्य किसी रोग से मुक्त हो रहा होता है।

विषयवासना से उत्पन्न की हुई सन्तान बचपन में प्रायः शुभ कार्यों में विघ्नकारक और बुरे कामों को ग्रहण करने वाली होती हैं। मातायें सदा शिकायत करती हैं कि क्या करें, सत्संग में जावें तो बच्चे तंग करते हैं शोर मचाते हैं, रोते हैं और दूसरों के सुनने में विघ्न डालते हैं और बच्चों के रोने पर यदि ध्यान न दिया जावे तो उपदेशक, कर्मचारी तथा दूसरे सुनने वाले धिक्कारते हैं। न्यूनाधिक भी कह देते हैं, कि जिसका बच्चा है वह उसे बाहर ले जावे। घर में या और कहीं यज्ञ हो, वेदी सजाओ तो बच्चे सब वस्तुएं खेल कूद में चीर फाड़ डालते हैं। क्रोध करो, मारो तो याज्ञिक लोग कहते हैं कि यज्ञ में क्रोध नहीं करना चाहिए। किसी पुस्तक के स्वाध्याय करने में लगें तो बच्चे पुस्तक छीन लेते हैं और फाड़ डालते हैं। मारो तो रो पड़ते हैं फिर जान छुड़ानी पड़ती है। संध्या जप में बैठो तो बार–बार आकर छेड़ते हैं। गोद में बैठ जाते हैं और चंचल स्वभाव से कुदकते–फुदकते हैं। वृत्ति क्षिप्त कर देते हैं। आगे पीछे न मागेंगे मगर जब आंख मूंद बैठो तो तुरन्त उनकी मांग रोटी, पानी, मिठाई और पैसे की शुरू हो जाती है। जरा उनको जवाब न दो तो "रूं रू" आरम्भ कर देते हैं। घर में पिता हुक्का पीता है तो बस पिता की अनुपस्थिति में हुक्के की बड़बड़ करते रहेंगे चाहे चिलम में कुछ भी न हो। ऐसे बड़ा होने पर स्वभाव बन जाता है। शराब रखी हो तो खाली

गिलास को मुंह लगाते रहते हैं। बोतल की ओर लपकते हैं। माता—पिता, बहिन—भाई से गाली देते सुनें तो कंठस्थ कर लेते हैं, फिर अज्ञानवश सबको गाली निकालते हैं। घर में ताश, चौपड़, शतरंज रखा हो तो लड़के—लड़कियां खेलने लग जाते हैं। बच्चों को बुराई से बचाने और शुभ कार्यों में लगाने के लिए माता—पिता को बड़े त्याग की आवश्यकता है बिना त्याग के बच्चे नहीं सुधरेंगे।

युवती—युवकों के श्रृंगार ने बेड़ा डुबो दिया है। हाय, आजकल के मामूली पढ़े लिखे नहीं परन्तु बहु—शिक्षित (हाईली—एजूकेटेड) स्त्री—पुरुष सन्तान से घबराते हैं। स्त्री को गर्भ हो जाता है तो वह कहती है कि यह क्या बला गले में पड़ गई। पुरुष से कहती है कि इसे निकलवाना चाहिए। दोनों काम के गुलाम गर्भपात के पाप को कुछ भी न समझ कर डाक्टरों, वैद्यों और लेडी डाक्टरों से दवाई लेकर अत्याचारी बनते हैं। शास्त्रविधि को न जानने से कई बार गर्भ ठहर जाता है। और फिर हमेशा डाक्टरों वैद्यों से मुंह नीचा किये रखते हैं और पाप करते और कराते हैं जिससे स्त्रियां फिर सदैव के लिए रुग्ण हो जाती हैं। इस हालत में अगर संतान पैदा हो जाती है तो वह सन्तान माता—पिता की अत्यन्त बैरी हो जाती है। यही कारण है कि कई लड़के माता—पिता से अत्यन्त घृणा करते हैं और अप्राकृतिक इच्छा रखते हैं कि उनके माता—पिता की मृत्यु हो जावे और वह खलासी पावे। कई युवतियां बहुत पढ़—पढ़ कर विवाह से घृणा करती हैं और अभिमान से कहती हैं कि हम आजीवन पर्यन्त ब्रह्मचारिणी रहेंगी।

परन्तु इस समय को समझ कर कि कौन युवती–युवक ब्रह्मचारी रह सकते हैं यह लोगों के सामने प्रतिज्ञाएं कर लेती हैं। जब उन युवतियों से निभ नहीं सकती तो...टक्कर मारती रहती हैं कि पाप भी करें और छुपा भी रहे और किसी को शक भी न हो। परन्तु वे यह नहीं जानती कि कौन किसी को धोखा दे सकता है। रज वीर्य के नाश होने पर मुंह से लाली काफूर और गालें अन्दर धंसने लग जाती हैं देखने वाले अन्दर–अन्दर ही उनके चरित्र का चित्र खींच लेते हैं। और कई बिचारी कुलीन तो किसी भी प्रकार का पाप नहीं करना चाहती कि न तो उनके बाप दादा का नाम डूबे और न ही वह आप बदनाम हों, मगर कामवेग को बार–बार रोकने पर हिस्टीरिया के दौरों का शिकार बन जाती हैं और स्वयं दुःखी और परिवार को दुःख का घर बना लेती हैं।

विषयासक्त शक्तिहीन और गुंलाम होता है

कहीं पुरुष चतुर होते हैं तो कहीं स्त्रियां। चतुर पुरुष तो स्त्री को अपने अधीन रखने के लिए स्त्री से कई चालें चलता है। भोली स्त्री पति की बांदी बनी रहती है। कहीं पुरुष तो साधारण है और स्त्री बड़ी चतुर है। तब स्त्री पुरुष को अपना अनुयायी दास बनाए रखती है और पुरुष को कामातुर देखकर उसे उल्लू बना दिखलाती है और अपना उल्लू सीधा करा लेती है और अपनी चाल ढाल से अपनी कोमलता (नाजुक मिजाजी) जाहिर करती है। बड़बोली स्त्रियां अपने सरल स्वभाव पतियों की जबान

पर सिक्का बिठा देती हैं और बात–बात में उनको यह कह देती हैं कि अभी तक बोलने का तरीका भी नहीं आता।

बेजोड़–विवाह

आजकल के ग्रेजुएट नौजवान कभी ऐसी भूल करते हैं कि फिर उनको पछताना पड़ता है। कहने को तो वह कहा करते हैं "आई वान्ट ए कम्पेनियन आफ लाइफ नाट मेयर वाईफ" मैं जीवन साथी चाहता हूं न कि केवल 'स्त्री' और चुनते हैं जीवन घातक "मर्डरर आफ लाइफ" कन्या की आयु की परवाह नहीं करते, चाहे वह अपने बराबर की आयु की हो या अपंने से बड़ी भी हो परन्तु हो अंग्रेजी पढ़ी हुई, फैशनेबल, टर फर और टु–टां खूब कर जानती हो। हो भी बड़े पदाधिकारी या धनवान की लड़की। मेज पर रोटी खाना, नौकर को हकूमत से बुलाना और खूब बोंलना जानती हो उससे विवाह करना स्वीकार करते हैं और जब विवाह हो जाता है फिर पुरुष की शामत आ जाती है। गृहस्थ का कोई सुख तो उन्हें प्राप्त होता नहीं। ऐसी स्त्रियों के आए दिन के व्यर्थ खर्चे जैसे श्रृंगार, सिनेमा, कपड़े, क्रीम आदि के अतिरिक्त उनके दुर्व्यवहार का दुःख पुरुष की जान को खा जाता है। कभी तो ऐसा भी होता है कि गृहस्थ की खुशी मनाने के लिए जब पुरुष अपनी मन चाही स्त्री से संग करने लगता है तो स्त्री ऐसी फटकार देती है जिससे उस पुरुष बेचारे का मान मिट्टी में मिल जाता है।

गृहस्थ कार्य कब तक

यदि माता–पिता अपना और अपने बच्चों का सुधार सचमुच चाहते हैं तो उन्हें देश काल की अवस्था का स्वाध्याय करके परिवर्तन भी करना चाहिए।

शास्त्रकारों की मर्यादा तो यह थी कि जब पुरुष की आयु ५० वर्ष की हो जाए 'झुरियां' पड़ने लगें, बाल सफेद होने को आ जावें और पुत्र के यहां पुत्र भी होवे तो वानप्रस्थ ले लेवें। तब गृहस्थ का कार्य बन्द करे। माता–पिता को गृहस्थ का कार्य त्याग देना चाहिए जब घर में पुत्र युवक और कन्या युवा हो। उनके होते हुए कभी सन्तान पैदा नहीं करनी चाहिए। कितनी लज्जा आती है जब इधर अपना बालक पैदा होने वाला हो। और उधर लड़के या लड़की का बच्चा होने वाला हो। परन्तु भ्रष्टता आ जाती है काम की पट्टी आंख परं बंध जाती है।

ब्रह्मचारी, युवक या गृहस्थी को घर या बैठक के कमरों में या कहीं भी अश्लील चित्र, नंगी स्त्रियों के फोटो या नाजनखरे से बैठी या खड़ी स्त्रियों की तस्वीरें और तिरछी चितवन से बनाये श्रृंगार किये स्त्रियों के चित्र कभी नहीं लटकाने चाहिये, जिसे देखने मात्र से धर्मात्मा पुरुषों के हृदयों में क्लेश हो, गृहपति का सम्मान उनके हृदयों में कम हो जाये, दुर्जनों के हृदयों में बुराई का प्रभाव अधिक हो जावे और गुप्त संस्कार घर वालों और बालकों पर पड़ते रहें।

मैं अपनी ही एक सच्ची घटना बतलाता हूं कि कई वर्ष

हुए मैं एक बड़े नगर में एक बड़े धनाड्य, मान्यवर और उदार चरित व्यवहारी सज्जन के यहां ठहरा हुआ था अकस्मात् मेरा दो दिन (चौदश और पूर्णमासी) का व्रत आ गया जो मौन और अदर्शन था। उस सज्जन ने अपने घर के ऊपर दोनों कमरे केवल मेरे रहने के लिये नियत कर दिये और स्वयं नीचे रहा। शायद सर्दी के दिन थे। मेरे लिए गलीचा, अच्छा बिस्तरा और आसन आदि वहां लगा दिये। त्रयोदश रात्रि को मैं वहां जा कर सो गया। प्रातः अपने नियमानुकूल कमरे में प्रभु भजन के लिये बैठ गया। सारी दिन व्यतीत हो गया किन्तु भजन में गड़बड़ मचती रही। मैं हैरान रहा और विचारने पर भी किसी वास्तविक परिणाम पर न पहुंच सका कि इसका क्या कारण है। रात्रि का समय हो गया। मैं अपने समय पर सो गया दूसरा दिन पूर्णमासी का हुआ। अकस्मात् मेरी दृष्टि ऊपर दीवार पर पड़ी तो क्या देखंता हूं कि नंगी सुन्दर लेड़ियों (स्त्रियों) के चित्र लटके हुये हैं। मेरा कलेजा धड़कने लगा और मैं वह कमरा छोड़कर दूसरे में जा बैठा। यह मेरे साथ बीती है। ये जड़ चित्र भी कितना बिगाड़ का कारण बन जाते हैं। इससे भी डरते रहना चाहिए।

टेक चन्द प्रभुआश्रित
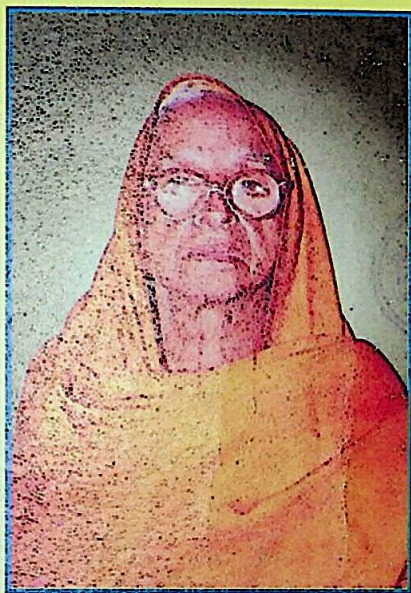
माता खुशां देवी

पूर्वनाम माता खुशां देवी धर्मपत्नी श्री हिम्मतराम जी छाबड़ा ने महात्मा सोमाश्रित जी की प्रेरणा से वैदिक भक्ति साधन आश्रम में वानप्रस्थ की दीक्षा लेकर बड़े श्रद्धाभाव से नित्य यज्ञ करती और सत्संग में शामिल होतीं, सुमधुर भजन गातीं, उनकी परोपकारी दानवृत्ति अनुकरणीय है। यज्ञ आदि शुभकर्मों और अनेक गुरुकुलों, आश्रमों एवं अनाथालयों में हजारों रुपये का दान करके अपने धन का सदुपयोग किया। प्रस्तुत पुस्तक भी माताजी के सात्विक सहयोग से प्रकाशित हो रही है।

इसी पुस्तक से

वाणी का व्यवहार पवित्र हो

वाणी शरीर में एक कन्या है। सब इन्द्रियां बाहिर हैं परन्तु इसे परमात्मा ने अन्दर रक्खा है। यह क[illegible] भी साधारण नहीं, राजकन्या है। बाहिर ओष्ठों का कोट [illegible]र बत्तीस दाँत रूपी द्वारपाल संगीनें उठाए सफेद वर्दी [illegible]ड़े हैं। सिपाहियों की वर्दी तो काली और भयावह हो[illegible] है। कालापन तम का चिन्ह है तथा सफेदपन सत्य का चिन्ह है। जिस प्रकार कन्या का जीवन पवित्र होना चाहिए उसी प्रकार वाणी व्यवहार भी पवित्र होना चाहिए। कन्या भी देवी कहलाती है और वाणी भी देवी है। जैसे कन्या को गौ कहा जाता है वैसे ही वैदिक परिभाषा में इस वाणी का नाम भी गौ है। कुमारी कन्या ब्राह्मणी के समान गिनी जाती और वाणी को भी ब्राह्मणी कहा गया है अतएव वाणी की हत्या करने वाले को गौहत्या, ब्रह्महत्या का भागी समझना चाहिए।

—वीतराग महात्मा प्रभु आ[illegible] जी महाराज